अभिनव कृषि

वर्ष-7 अंक-2 जून, 2025 रजि. नं. : RAJHIN/2021/81869

विशेषांक

खरीफ फसल विशेषांक: खरीफ फसलों में समन्वित पोषक तत्व, कीट, रोग प्रबंधन, मृदा एवं जल प्रबंधन

प्रसार शिक्षा निदेशालय
कृषि विश्वविद्यालय, कोटा (राजस्थान)-324001

FMC
An Agricultural Sciences Company

सोयाबीन में फसल सफलता की राह...

हमारी उत्पाद श्रृंखला के साथ

Website: https://ag.fmc.com/in/en
https://www.facebook.com/FMCIndia/
https://www.youtube.com/fmcindiachannel
Arc
Available on IOS and Android
Customer Care No.: 1800 102 6545
E-mail : ask@fmc.com

FMC, the FMC logo, Authority NXT, Tuventa, Coragen, Galaxy NXT and Galaxy are trademarks of FMC Corporation and/or an affiliate. ©2025 FMC Corporation. All rights reserved

अभिनव कृषि

वर्ष-7 अंक-2 जून, 2025 रजि. नं. : RAJHIN/2021/81869

संरक्षक

डॉ. अभय कुमार व्यास
माननीय कुलपति, कृषि विश्वविद्यालय, कोटा

सम्पादक मण्डल

डॉ. प्रताप सिंह
निदेशक प्रसार शिक्षा
प्रधान संपादक एवं प्रकाशक

डॉ. के.सी.मीना
सह आचार्य (प्रसार शिक्षा)
संपादक एवं समन्वयक

डॉ. राकेश कुमार बैरवा
सह आचार्य (शस्य विज्ञान)
संपादक

डॉ. घनश्याम मीना
सह आचार्य (पशुपालन विज्ञान)
सह–संपादक

डॉ. डी.एल. यादव
सहा. आचार्य (पादप रोग विज्ञान)
सह–संपादक

डॉ. अरविन्द नागर
विषय विशेषज्ञ (उद्यान विज्ञान)
सह–संपादक

डॉ. सेवाराम रूण्डला
विषय विशेषज्ञ (मृदा विज्ञान)
सह–संपादक

डॉ. रूप सिंह
विषय विशेषज्ञ (पौध सरंक्षण)
सह–संपादक

श्रीमती गुंजन सनाढ्य
विषय वस्तु विशेषज्ञ (गृह विज्ञान)
सह–संपादक

सुश्री सरिता
तकनीकी सहायक
सह–संपादक

मनोनीत सलाहकार मण्डल

डॉ.एस.के. जैन
निदेशक, अनुसंधान

डॉ. आशुतोष मिश्रा
अधिष्ठाता, उद्यानिकी एवं वानिकी महाविद्यालय, झालावाड़

डॉ. वीरेन्द्र सिंह
अधिष्ठाता, कृषि महाविद्यालय, कोटा

डॉ. एन.एल. मीणा
अधिष्ठाता, कृषि महाविद्यालय, हिण्डौली

डॉ. मुकेश चन्द गोयल
निदेशक, पी.एम.एण्ड ई.

डॉ. महेन्द्र सिंह
निदेशक, मानव संसाधन विकास

सदस्यता शुल्क

- ☞ त्रैमासिक (प्रति अंक) 50 रू.
- ☞ वार्षिक (चार अंक) 200 रू
- ☞ आजीवन (15 वर्ष)1500 रू.

विज्ञापन दरें

(i)	अन्तिम सम्पूर्ण (रंगीन)	रू. 10,000/-
(ii)	प्रथम या अन्तिम पृष्ठ के पीछे (रंगीन)	रू. 7,000/-
(iii)	अन्तिम आधा पृष्ठ (रंगीन)	रू. 6,000/-
(iv)	प्रथम या अन्तिम पृष्ठ के पीछे आधा पृष्ठ (रंगीन)	रू. 4,000/-
(v)	अन्दर का सम्पूर्ण पृष्ठ (रंगीन)	रू. 5,000/-
(vi)	अन्दर का आधा पृष्ठ (रंगीन)	रू. 3000/-
(vii)	अन्दर का सम्पूर्ण पृष्ठ (श्याम–श्वेत)	रू. 5,000/-
(viii)	अन्दर का आधा पृष्ठ (श्याम–श्वेत)	रू. 2,500/-

नोट : यदि विज्ञापन वर्ष के सभी चार अंकों के लिए दिया जाता है तो उपरोक्त दरों में 25 प्रतिशत की कमी की जायेगी।

सदस्यता एवं नवीनीकरण हेतु

खाता धारक : DEE, Agriculture University, Kota
बैंक : ICICI BANK, Nayapura, Kota
खाता संख्या : 687801700345
IFSC : ICIC0006878

लेख एवं सुझाव भेजने का पता

"अभिनव कृषि"
प्रसार शिक्षा निदेशालय, कृषि विश्वविद्यालय, कोटा
बोरखेड़ा, बारां रोड़ कोटा (राजस्थान) – 324001
Email: abhinavkrishi.aukota@gmail.com दूरभाष : 0744- 2326727

प्रकाशक : प्रसार शिक्षा निदेशालय, कृषि विश्वविद्यालय, कोटा
मुद्रक : डामयण्ड प्रिन्टर्स, नई धानमण्डी, कोटा (राज.) मो. 9414231079

नोट– "अभिनव कृषि" में आलेख प्रकाशन हेतु लेखकों का सदस्य होना अनिवार्य है तथा लेखों में व्यक्त विचारों, जानकारियों, आंकड़ों आदि के लिए लेखक स्वयं उत्तरदायी है। इस पत्रिका में दिये गये विज्ञापनों के उत्पादों आदि की कृषि विश्वविद्यालय, कोटा किसी प्रकार की अनुशंसा नही करता है।

डॉ. प्रताप सिंह
निदेशक (प्रसार शिक्षा)

Directorate of Extension Education
प्रसार शिक्षा निदेशालय
AGRICULTURE UNIVERSITY, KOTA
कृषि विश्वविद्यालय, कोटा
Borkhera, Baran Road, Kota 324 001 (Raj.)
बोरखेडा, बारां रोड, कोटा 324001 (राज.)

प्रधान संपादक की कलम से.....

विकसित कृषि संकल्प अभियान, कृषि एवं किसान कल्याण मंत्रालय, भारत सरकार की एक महत्वपूर्ण पहल है, जिसका उद्देश्य किसानों को आधुनिक कृषि तकनीकों, योजनाओं और नवाचारों से जोड़कर कृषि को आत्मनिर्भर और सतत् बनाना है। विकसित कृषि संकल्प अभियान में कृषि विज्ञान केन्द्र, कृषि विभाग तथा भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद की स्थानीय संस्थाएं राज्य सरकार, कृषि मंत्रालय तथा अन्य संबंधित विभाग गाँव–गाँव जाकर कृषि की नवीन तकनीकी प्रदान कर रहे हैं तथा कृषकों की समस्याओं का भी निदान कर रहे है। यह अभियान ग्रामीण विकास और कृषक समृद्धि की दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम है।

आज के बदलते सामाजिक, शैक्षणिक एवं वैज्ञानिक परिवेश में सटीक जानकारी एवं विश्लेषणात्मक लेखों की आवश्यकता पहले से कहीं अधिक है। हमारा प्रयास रहा है कि हम पाठकों को गुणवत्तापूर्ण, रोचक और ज्ञानवर्धक सामग्री उपलब्ध कराएं, जो न केवल उन्हें विचार करने के लिए प्रेरित करे, बल्कि उन्हें सकारात्मक दिशा में आगे बढ़ने का मार्ग भी दिखाए।

खरीफ मौसम भारतीय कृषि के लिए महत्वपूर्ण माना जाता है जिसमें धान, मक्का, सोयाबीन, उड़द, मूंग, ज्वार, मूंगफली, अरहर, कपास जैसी महत्वपूर्ण फसलें उगाई जाती हैं। इस अंक में खरीफ फसलों की उन्नत किस्मों, नवीन तकनीकों, जल प्रबंधन, कीट एवं रोग नियंत्रण, जैविक खेती तथा जलवायु–अनुकूल कृषि पद्धतियों पर विशेष रूप से महत्व दिया गया है।

"अभिनव कृषि" पत्रिका के माध्यम से आधुनिक वैज्ञानिक जानकारी को सरल और बोधगम्य रूप में किसानों तक पहुँचाना है, ताकि वे उत्पादन में वृद्धि के साथ–साथ आयवर्धन की दिशा में भी आगे बढ़ सकें।

मैं सभी लेखकों, संपादक मण्डल सदस्यों, समीक्षकों एवं सहयोगियों के प्रति हार्दिक आभार व्यक्त करता हूँ, जिनके अथक परिश्रम, रचनात्मक सोच और क्रियाशीलता से यह अंक प्रकाशित करने में सुगमता हुई है।

अंत में, मैं सभी पाठकों से निवेदन करता हूँ कि वे अपने विचार, सुझाव एवं प्रतिक्रियाएं हमसे साझा करें, जिससे हम आगामी संस्करणों को और भी बेहतर बना सकें। आपका सहयोग और स्नेह हमारे लिए प्रेरणा स्त्रोत है।

यह कहते हुए अत्यंत हर्ष हो रहा है कि "अभिनव कृषि" पत्रिका का यह खरीफ विशेषांक अंक किसानों, कृषि वैज्ञानिकों, विस्तार कार्यकर्ताओं, छात्रों तथा कृषि हितधारकों के लिए नवीन जानकारी, नवाचारों और अनुभवों का एक प्रभावी संकलन है।

जय जवान, जय किसान, जय विज्ञान

(प्रताप सिंह)

वर्ष-7 अंक-2 जून, 2025

अभिनव कृषि

अनुक्रमणिका

क्र.सं.	विषय विवरण	पृष्ठ संख्या
1.	हाड़ोती संभाग हेतु सोयाबीन की उन्नत प्रजातियाँ एवं उनकी विशेषताऐ भरत लाल मीना, धर्म सिंह मीना, बी के पाटीदार एवं सुशीला कलवानिया	1–3
2.	धान में समेकित पोषक तत्व प्रबंधन राजेंद्र कुमार यादव, विनोद कुमार यादव, हरफूल मीणा एवं राकेश कुमार यादव	4–6
3.	तिल की फसल के प्रमुख रोग, कीट एवं रोकथाम किरण कुमावत	7–8
4.	चौडी क्यारी कूँड (बी.बी.एफ):जलवायु अनुकूलन सोयाबीन उत्पादन की उन्नत विधि उदिती धाकड़, शालिनी मीणा, के.एम.शर्मा एवं चमन कुमारी जादौन	9–12
5.	खरीफ फसल प्रबंधन में मिट्टी और जल संरक्षण की भूमिका पूनम फौजदार, खजान सिंह एवं पी. के. पी. मीना	13–15
6.	खरीफ प्याज की उन्नत खेती गुलाब चौधरी, सुरेश चन्द कांटवा, विक्रमजीत सिंह एवं अशोक चौधरी	16–18
7.	धान की सीधी बुवाई समय व लागत की बचत शालिनी मीणा, उदिती धाकड़, आर. के. मीणा एवं के. एम. शर्मा	19–20
8.	प्रमुख खरीफ फसलों की जैविक विधि द्वारा उन्नत खेती भेरू लाल कुम्हार, राहुल भारद्वाज, राकेश चौधरी एवं रेखा कुमावत	21–23
9.	परंपरा और प्रगति : राजस्थान में प्राचीन व आधुनिक जल प्रबंधन शालिनी मीणा, उदिती धाकड, रामकिशन मीणा एवं योगेन्द्र कुमार मीणा	24–26
10.	बहु उद्देशीय मिश्रित अनाजः आटा पोषक मान एवं मूल्य संवर्धित खाद्य उत्पाद प्रियंका जोशी एंव नवाब सिंह	27–28
11.	बायो प्राइमिंग और बायो पॉलिमरः बीज उपचार का जैविक तरीका नीरज पाराशर एवं राजेश कुमार शर्मा	29–30
12.	फसलों में बीजोपचार की उपयोगिता एवं विधि हरीश वर्मा, के.एम.शर्मा एवं मोहम्मद युनूस	31
13.	गर्मी और सूखा तनाव का दालों के उत्पादन पर प्रभाव और उनके निवारण की रणनीतियाँ–टिकाऊ कृषि की दिशा में एक वैज्ञानिक पहल राजेश कुमार शर्मा, नीरज पाराशर, अर्जुन कुमार वर्मा एवं कमल कुमार शर्मा	32–33

हाड़ोती संभाग हेतु सोयाबीन की उन्नत प्रजातियाँ एवं उनकी विशेषताऐ

भरत लाल मीना, धर्म सिंह मीना, बी के पाटीदार एवं सुशीला कलवानिया
कृषि अनुसंधान केन्द्र, उम्मेदगंज फार्म, कोटा (राज.)

सोयाबीन की उन्नत किस्में : किसी भी फसल की अधिकाधिक उत्पादन लेने में उन्नत किस्मों तथा उनके गुणवत्तापूर्ण बीज का महत्वपूर्ण भूमिका होती है। विकसित उन्नत किस्मों को विभिन्न जलवायु क्षेत्रों में कम से कम तीन वर्षो के निरन्तर परीक्षण एवं आंकलन में लाभकारी पाये जाने पर ही उन्हे राज्य / क्षेत्र अनुसार विमोचित किया जाता है। इन किस्मों की अधिक उत्पादन क्षमता एवं विशेष गुण होते है जिनसे वह विभिन्न जैविक एवं अजैविक करको का विपरीत परिस्थितियो में भी सामना करने में सक्षम होती है। विगत कुछ वर्षो में देखि जा रही मौसम की विषम परिस्थिति एवं इससे होने वाली संभावित नुकसान कम करने हेतु यह अनुशंसा है किकिस्मों की विवधता प्रणाली अपनाये अर्थात हमेशा 3–4 किस्मों की खेती करनी चाहिए. इससे फलियों के चटकने से होने वाले नुकसान से बचा जा सकता है साथ ही कीट–व्याधियो के नियंत्रण, कटाई–गहाई में प्रयाप्त समय की सुविधा के साथ–साथ किस्मों की अधिकाधिक उत्पादन क्षमता प्राप्त करने का भी लाभ मिलता है।

सोयाबीन की किस्मों के चयन के लिए महत्वपूर्ण बातें

1. रोग प्रतिरोधक क्षमता : सबसे पहली और जरूरी बात यह है कि आप ऐसी वैरायटी चुनें जिसकी रोग प्रतिरोधक क्षमता शानदार हो। पिछले साल मौसम की अनिश्चितता के कारण कई रोग जैसेः फ्रॉगआई लीफस्पॉट चारकोलरोट एरियललीफब्लाइड फसल को प्रभावित करते हैं। ऐसे में यदि आपकी वैरायटी की रोग प्रतिरोधक क्षमता अच्छी होगी, तो ये रोग आपकी फसल को कम नुकसान पहुंचाएंगे।

2. पकने की अवधि : वैरायटी चुनते समय ध्यान रखें कि उसकी पकने की अवधि 90 से 100 दिन के बीच हो, और अधिकतम 115 दिन तक हो। इससे ज्यादा अवधि वाली वैरायटी न लें। यदि आप मैकेनिकल या कंबाइंड हार्वेस्टर से कटाई करते हैं तो ऐसा चयन करें जो फली जमीन से 1.5 फीट ऊपर बनने लगे और पौधे की लंबाई अच्छी हो ताकि कटाई में समस्या न हो।

3. पुरानी वैरायटी से बचाव : जितनी पुरानी वैरायटी होगी, उसकी रोग प्रतिरोधक क्षमता उतनी कम होती जाएगी। इसलिए पुराने बीजों की बजाय दो से तीन अलग–अलग नई वैरायटियां लगाएं ताकि अगर किसी एक में समस्या आए, तो दूसरी वैरायटी से नुकसान पूरा किया जा सके।

4. उत्पादन क्षमता : उत्पादन क्षमता भी सबसे जरूरी बात है। वैरायटी की न्यूनतम उत्पादन क्षमता कम से कम 8 क्विंटल प्रति एकड़ होनी चाहिए ताकि लागत और मुनाफा संतुलित हो। आजकल निम्नलिखित किस्में किसानों द्वारा प्रयोग में लायी जा रही है।

(1) जे.एस. 335 : पीले दाने वाली तथा शीघ्र पकने वाली (100–105 दिन) इस किस्म में फूल बैंगनी रंग के होते है तथा फलियां चिकनी एवं चटकती नहीं हैं। दाना पीला, मध्यम आकार का तथा काली नाभिका (हायलम) वाला होता है। अच्छी अंकुरण क्षमता वाली इस किस्म की पैदावार 25–30 क्विंटल प्रति हैक्टेयर होती है। यह किस्म जीवाणु पत्ती धब्बा एवं अंगमारी रोगों के लिये प्रतिरोधी तथा मोजेक एवं तना मक्खी के लिये सहनशील है।

उन्नत किस्में एवं उनकी विशेषताएं :

क्र.सं.	किस्मों का नाम	पकने की अवधि	उपज (क्विं/है.)
1	जे.एस. 335	100–105 दिन	25–30
2	जे.एस.95–60	80–85 दिन	18–20
3	आर के एस. 24	98–100 दिन	25–30
4	आर के एस. 45	90–95 दिन	25–30
5	जे.एस. 20–34	90 दिन	20–25
6	जे.एस. 20–29	95 दिन	20–25
7	आर के एस.113	98–102 दिन	22–25
8	एन.आर.सी. 127	97–101 दिन	20–23
9	जे.एस. 20.116	95–100 दिन	20–25
10	जे.एस. 20–94	95–98 दिन	20–22
11	जे.एस. 20–98	95–98 दिन	20–22
12	एन. आर. सी. 138	90–93 दिन	22–24
13	आर.वी.एस.एम. 2011–35	95–100 दिन	21–23
14	जे.एस. 22–12	90–92 दिन	20–22
15	जे.एस. 22–16	90–91 दिन	18–20
16	एन.आर.सी. 150	90–92 दिन	20.22
17	जे.एस. 23–03	90–91 दिन	21–23
18	जे.एस. 23–09	90–92 दिन	20–23

(2) जे.एस. 95–60 : यह किस्म जे.एस. 93–05 से भी 8–10 दिन पूर्व पककर तैयार हो जाती है। दाने का आकार अण्ड़ाकार–बोल्ड, नाभिका हल्की भूरी, दाना चमकदार पीला होता है तथा अंकुरण क्षमता 85–90 प्रतिशत होती है। फूलों का रंग नीला होता है। तना, पत्तियाँ व फली चिकनी होती है। पत्तियाँ गहरे हरे रंग की होती है तथा यह 85–88 दिन में पक जाती है।बीज दर 80 किलो प्रति हैक्टेयर एवं लाइन से लाइन की दूरी 30 से.मी. पर औसत उत्पादन 20 क्विंटल प्रति हैक्टेयर होता है।

यह किस्म जड़ सड़न व पर्णीय बीमारियों, पत्री चूसक कीटों, पत्रियां काटने वाले कीटों के लिये प्रतिरोधी सहनशील क्षमता होती है।

(3) प्रताप राज–24 (आर.के.एस. 24) : मध्यम ऊँचाई की यह किस्म 95–100 दिन में पककर तैयार हो जाती है। फूल सफेद, पत्तियां गहरी हरी रंग की चौड़ी, तना मजबूत तथा पत्तियों, तने और फलियों पर भूरे रंग के रोये पाये जाते है। बीज हल्के पीले रंग के भूरी नाभिका वाले होते है। उचित परिस्थितियों में इसकी पैदावार 25–30 क्वि0/है0 होती है। इस किस्म में तेल की मात्रा 21.5 प्रतिशत होती है। यह किस्म गर्डल, बीटल, सेमी लूपर तथा तम्बाकू इल्ली से मध्यम प्रतिरोधी पायी गई है तथा पीत विषाणु रोग, चार कोल रोट (तना गलन) तथा पत्ती धब्बा रोगों से भी मध्य प्रतिरोधी पायी गई है।

(4) प्रताप राज–45 (आर.के.एस. 45)

- औसत उपज : 25–30 क्विं./है.
- पकाव अवधि: 95–98 दिन।
- तेल की मात्रा: 21 प्रतिशत ।
- फूल सफेद, पत्तियां चौड़ी व गहरी हरी, तना मजबूत।
- पत्तियों, तने और फलियों पर भूरे रंग के रोये।
- बीज हल्के पीले एवं भूरी नाभिका वाले।
- गर्डल बीटल, सेमीलूपर तथा तम्बाकू इल्ली से मध्यम प्रतिरोधी।
- पीत विषाणु रोग, चारकोल रोट (तना गलन) तथा पत्ती धब्बा रोगों से मध्यम प्रतिरोधी।

(5) कोटा सोया–1 (आर.के.एस.–113) : यह मध्यम ऊँचाई वाली किस्म है जिसके फूल बैंगनी, पत्तियां हल्के हरे रंग की व पत्तियां, तने व फलियों पर भूरे रंग के रोये पाये जाते है। बीज मध्यम आकार, पीले रंग एवं भूरी नाभिका वाले होते है। यह किस्म लगभग 102 दिन में पककर 22–25 क्विंटल/हैक्टर की पैदावार देती हैं। इस किस्म में तेल की मात्रा औसतन 18.63 प्रति ात होती है। यह किस्म पीतशीरा मोजेक रोग से प्रतिरोधी तथा पत्ती भक्षक, तना मक्खी, चेंपा एवं पर्णसुरंगक कीटों से मध्यम प्रतिरोधी हैं।

(6) जे.एस. 20–34 : जे.एस. 20–34 मध्यम ऊँचाई वाली किस्म है जिसके फूल सफेद, पत्तियां गहरे हरे रंग की व तने व फलियां रोये रहित है। बीज मध्यम आकार के, पीले रंग के काली नाभिका वाले होते है। यह किस्म लगभग 90 दिन में पककर 20–25 क्विंटल/हैक्टर तक की पैदावार देती हैं। इस किस्म में तेल की मात्रा 20–22 प्रतिशत होती है। यह किस्म पत्ती खाने वाले कीटों, तना मक्खी, चारकोल रॉट, पत्ती धब्बा रोग, जीवाणु रोग से सहनशील हैं।

(7) जे.एस. 20–29 : जे.एस. 20–29 मध्यम ऊँचाई वाली किस्म है जिसके फूल सफेद, पत्तियां हरे रंग की व फलियों पर भूरे–पीले रंग के रोये पाये जाते है। बीज बडे आकार के, पीले रंग के काली नाभिका वाले होते है। यह किस्म लगभग 95 दिन में पककर 20–25 क्विंटल/हैक्टर तक की पैदावार देती हैं। इस किस्म में तेल की मात्रा 20–22 प्रतिशत होती है। यह किस्म पत्ती खाने वाले कीटों, तना मक्खी, गर्डल बीटल, जीवाणु रोग, चारकोल रॉट, पत्ती धब्बा , झुलसा एवं विशाणु रोग से सहनशील हैं।

(8) एन आर सी 127 : यह मध्यम ऊँचाई की एवं पीले दाने वाली किस्म है जिसकी पत्तिया हल्के हरे रंग की एवं तने व फलियों पर हल्के रंग के रोये पाये जाते है इस किस्म मे फूलों का रंग सफेद एवं बीज मध्यम आकार के पीले रंग के एवं जिसमे नाभिका (hilum) काले रंग की होती है। यह किस्म लगभग 97–101 दिन पककर लगभग 20–23 क्वि.प्रति हेक्टर की पेंदावर देती है इसमे तेल की मात्र 18–19 प्रतिशत होती है यह किस्म पीट शिरा मोजेक रोग के प्रति प्रतिरोधी पायी गयी। यह किस्म सोया फोर्टिफाइड़ व्हीट फ्लोर के लिय उपुक्त है क्योकि इसमे (Anti Nutritional factor) के टी आई नहीं पाया जाता है। इस तरह की देश मे यह पहली किस्म है।

(9) जे.एस. 20–116 : यह मध्यम अवधि मे पकने वाली किस्म है जो 95–100 दिनों पक कर अनुकूल परिस्थितियो मे 20–25 किव. प्रति हेक्टर की पैदावार देती है इस किस्म मे सफेद रंग के फूल, तने व फलियों चिकनी होती है यह मध्यम ऊँचाई की, पीले रंग के दाने एवं उच्च अंकुरण क्षमता वाली किस्म है बीज मध्यम आकार, एवं काले रंग नाभिका द्धभ्पसनउ़ वाले होते है। इसमे तेल की मात्र 19-20% पायी जाती है यह बहू प्रतिरोधी किस्म है जो जैविक व्याधियों जैसे पीला मोजेक, चारकोल सड़न, राइजोक्टोनिया एरियल ब्लाइट, पत्ती धब्बा, तन्ना मक्खी, तना छेदक एवं पत्तीभक्षक इल्लिया।

(10) जे.एस. 20–94 : यह मध्यम अवधि मे पकने वाली किस्म है जो जे.एस. 95–98 दिनों पक कर अनुकूल परिस्थितियो मे 20–22 किव. प्रति हेक्टर की पैदावार देती है इस किस्म मे फूलो का रंग बेंगनी एवं तने व फलियों भूरे रंग के रोये पाये जाते है यह मध्यम ऊँचाई की, पीले रंग के दाने एवं उच्च अंकुरण क्षमता वाली किस्म है बीज मध्यम आकार, एवं काले रंग नाभिका (Hilum) वाले होते है। इसमे तेल की मात्र 20% पायी जाती है यह बहू प्रतिरोधी किस्म है जो जैविक व्याधियों जैसे पीला मोजेक, चारकोल सड़न, झुलसन, जीवाणु धब्बा, तना धब्बे एवं तना मक्खी, चक्रभृंग एवं पत्तीभक्षक इल्लिया के प्रति सहनशील है

(11) जे.एस. 20–98 : यह मध्यम अवधि मे पकने वाली किस्म है जो 95–98 दिनों पक कर अनुकूल परिस्थितियो मे 20–22 किव. प्रति हेक्टर की पैदावार देती है इस किस्म मे फूलो का रंग सफेद एवं तने व फलियों भूरे रंग के रोये पाये जाते है यह मध्यम ऊँचाई की, पीले रंग के दाने एवं उच्च अंकुरण क्षमता वाली किस्म है बीज मध्यम आकार, एवं काले रंग नाभिका (Hilum) वाले होते है। इसमे तेल की मात्र 19% पायी जाती है यह बहू प्रतिरोधी किस्म है जो जैविक व्याधियों जैसे पीला मोजेक, चारकोल सड़न, झुलसन, जीवाणु धब्बा, पर्णीयधब्बे एव तना मक्खी, चक्रभृंग एवं पत्तीभक्षक इल्लिया के प्रति सहनशील है

(12) एन. आर. सी. 138 : यह अल्प अवधि मे पकने वाली किस्म है जो 90–93 दिनों पक कर अनुकूल परिस्थितियो मे 20–24 क्वि. प्रति हेक्टर की पैदावार देती है इस किस्म मे सफेद रंग के फूल, तने व फलियों गहरे भूरे रंग के रोये पाये जाते हैं यह मध्यम ऊँचाई (44.59 से.मी) की, पीले रंग के दाने पर भूरे रंग की नाभिका (Hilum) वाले होते है। बीज

मध्यम आकार जिनके 100 दानू का वजन 9.9.10.20 ग्राम होता है। इसमे तेल की मात्र 20.10% पायी जाती हैं। यह किस्म पॉड ब्लाइट, टारगेट लीफ स्पॉट एवं पीला मोजेक के लिए मध्य प्रतिरोधी पायी गयी हैं। यह गर्डल बिटिल के लिए कम प्रतिरोधी एवं पर्णभक्षी कीटो के लिए मध्यम प्रतिरोधी पायी गयी।

(13) आर.वी.एस.एम. 2011–35 : यह मध्यम अवधि मे पकने वाली किस्म है जो 95–98 दिनों पक कर अनुकूल परिस्थितियो मे 20–23 क्वि. प्रति हेक्टर की पैदावार देती है इस किस्म मे फूलो का रंग सफेद एवं तने व फलियों पर भूरे रंग के रोये पाये जाते है यह मध्यम ऊँचाई (63–73 से.मी.), दाने अण्डाकार, पीले रंग एवं काले रंग की नाभिका (Hilum) वाले होते है। इसके बीज बडें आकार के जिनका 100 दानों का भार लगभग 13.10 ग्राम होता हैं। इसमे तेल की मात्रा 19.13% पायी जाती है। यह किस्म पॉड ब्लाइट, टारगेट लीफ स्पॉट एवं पीला मोजेक के लिए मघ्यम प्रतिरोधी पायी गयी हैं व तना मक्खी, गर्डल बिटिल एवं पर्णभक्षी कीटो के लिए बहू प्रतिरोधी पायी गयी

(14) जे.एस. 21–72 : यह मध्यम अवधि मे पकने वाली किस्म है जो 95–100 दिनों पक कर अनुकूल परिस्थितियो मे 23–25 क्वि. प्रति हेक्टर की पैदावार देती है इस किस्म अर्ध–सिमित वृधि, फूलो का रंग सफेद एवं तने व फलियों पर भूरे रंग के रोये पाये जाते है यह मध्यम ऊँचाई (60–75 से.मी.), दाने अण्डाकार, पीले रंग एवं भूरे रंग की नाभिका (Hilum) वाले होते है। इसके बीज बडें आकार के जिनका 100 दानों का भार लगभग 10–11 ग्राम होता हैं। इसमे तेल की मात्रा 20.10% पायी जाती है। यह किस्म पॉड ब्लाइट, टारगेट लीफ स्पॉट एवं पीला मोजेक के लिए मघ्यम प्रतिरोधी पायी गयी हैं व तना मक्खी, गर्डल बिटिल एवं पर्णभक्षी कीटो के लिए बहू प्रतिरोधी पायी गयी

(14) जे.एस. 22–12 : यह अल्प अवधि मे पकने वाली किस्म है जो 90–92 दिनों पक कर अनुकूल परिस्थितियो मे 20–22 क्वि. प्रति हेक्टर की पैदावार देती है इस किस्म अर्ध–सिमित वृधि, बेंगनी रंग के फूल, तने व फलियों चिकनी होती है यह मध्यम ऊँचाई की, पीले रंग के दाने एवं उच्च अंकुरण क्षमता वाली किस्म है बीज मध्यम आकार, एवं काले रंग नाभिका (Hilum) वाले होते है। बीज मध्यम आकार जिनके 100 दानू का वजन 10.11 ग्राम होता है। इसमे तेल की मात्र 21.69% पायी जाती हैं। यह किस्म पीला मोजेक, चारकोल रोट, पर्णीय झुलसान, एन्थ्रेकनोज, फली झुलसन, तना मख्यी, चक्रभृंग एवं पत्ती भक्षको के लिए मध्यम प्रतिरोधी से उच्च प्रतिरोधी पाई गयी।

(15) जे.एस. 22–16 : यह अल्प अवधि मे पकने वाली किस्म है जो 90–91 दिनों पक कर अनुकूल परिस्थितियो मे 18–20 क्वि. प्रति हेक्टर की पैदावार देती है इस किस्म अर्ध–सिमित वृधि, फूलो का रंग सफेद एवं तने व फलियों भूरे रंग के रोये पाये जाते है यह मध्यम ऊँचाई की, पीले रंग के दाने एवं उच्च अंकुरण क्षमता वाली किस्म है बीज मध्यम आकार, एवं काले रंग नाभिका (Hilum) वाले होते है। बीज मध्यम आकार जिनके 100 दानू का वजन 10.11 ग्राम होता है। इसमे तेल की मात्र 22.04% पायी जाती हैं। यह किस्म पीला मोजेक, चारकोल रोट, पर्णीय झुलसान, एन्थ्रेकनोज, फली झुलसन आदि बीमारियों के लिए मध्यम प्रतिरोधी से उच्च प्रतिरोधी है एवं तना मख्यी, चक्रभृंग एवं पत्ती भक्षको के लिए मध्यम प्रतिरोधी गयी।

(16) एन.आर.सी. 150 : यह अल्प अवधि मे पकने वाली किस्म है जो 90–92 दिनों पक कर अनुकूल परिस्थितियो मे 20–22 क्वि. प्रति हेक्टर की पैदावार देती है इस किस्म अर्ध–सिमित वृधि, सफेद रंग के फूल, तने व फलियों गहरे भूरे रंग के रोये पाये जाते हैं यह मध्यम ऊँचाई 65–75 से.मी की, पीले रंग के दाने पर काले रंग की नाभिका (Hilum) वाले होते है। बीज मध्यम आकार जिनके 100 दानू का वजन 9.10 ग्राम होता है। इसमे तेल की मात्र 21.10% पायी जाती हैं। यह किस्म सोया खाद्य पदार्थो में आने वाली गंध के लिए असरकारी लिपोक्सिजिनेज–2 मुक्त किस्म है। यह किस्म चारकोल रोट एवं पीला मोजेक के लिए मघ्य प्रतिरोधी पायी गयी हैं। यह गर्डल बिटिल के लिए कम प्रतिरोधी एवं पर्णभक्षी कीटो के लिए मध्यम प्रतिरोधी पायी गयी।

(17) जे.एस. 23–03 : यह अल्प अवधि मे पकने वाली किस्म है जो 90–93 दिनों पक कर अनुकूल परिस्थितियो मे 21–23 क्वि. प्रति हेक्टर की पैदावार देती है इस किस्म अर्ध–सिमित वृधि, बेंगनी रंग के फूल, तने व फलियों गहरे भूरे रंग के रोये पाये जाते हैं यह मध्यम ऊँचाई 60–65 से.मी की, पीले रंग के दाने पर काले रंग की नाभिका (Hilum) वाले होते है। बीज मध्यम आकार जिनके 100 दानू का वजन 9.10 ग्राम होता है। इसमे तेल की मात्र 20.10% पायी जाती हैं। यह किस्म चारकोल, रोटएन्थ्रेकनोज, फली झुलसन एवं पीला मोजेक के लिए मघ्य प्रतिरोधी पायी गयी हैं।

(18) जे.एस. 23–09 : यह अल्प अवधि मे पकने वाली किस्म है जो 90–92 दिनों पक कर अनुकूल परिस्थितियो मे 20–23 क्वि. प्रति हेक्टर की पैदावार देती है इस किस्म अर्ध–सिमित वृधि, बेंगनी रंग के फूल, तने व फलियों गहरे भूरे रंग के रोये पाये जाते हैं यह मध्यम ऊँचाई 60–65 से.मी की, पीले रंग के दाने पर काले रंग की नाभिका (Hilum) वाले होते है। बीज मध्यम आकार जिनके 100 दानू का वजन 9.10 ग्राम होता है। इसमे तेल की मात्र 20.10% पायी जाती हैं। यह किस्म चारकोल, रोटएन्थ्रेकनोज, फली झुलसन एवं पीला मोजेक के लिए मघ्य प्रतिरोधी पायी गयी हैं।

***

धान में समेकित पोषक तत्व प्रबंधन

राजेंद्र कुमार यादव, विनोद कुमार यादव, हरफूल मीणा एवं राकेश कुमार यादव

कृषि अनुसन्धान केंद्र, उम्मेदगंज, कोटा, कृषि महाविद्यालय, उम्मेदगंज, कोटा

धान भारत की प्रमुख खाद्यान्न फसलों में से एक है, यह लोगों का मुख्य आहार है। इसकी उत्पादकता में वृद्धि के लिए उचित पोषक तत्व प्रबंधन अत्यंत आवश्यक है। केवल रासायनिक उर्वरकों पर निर्भर रहने से मृदा की उर्वरता, पर्यावरण संतुलन तथा दीर्घकालीन उत्पादन पर नकारात्मक प्रभाव पड़ता है। ऐसे में "समेकित पोषक तत्व प्रबंधन" एक महत्वपूर्ण कृषि तकनीक के रूप में विकसित हुई है।

समेकित पोषक तत्व प्रबंधन वह प्रणाली है जिसमें रासायनिक उर्वरकों, जैविक खादों (गोबर खाद, कम्पोस्ट, हरी खाद) और जैव उर्वरकों (जैसे–राइजोबियम, एजोटोबैक्टर, फॉस्फोबैक्टीरिया आदि) का संतुलित एवं सामूहिक उपयोग किया जाता है ताकि मृदा की उत्पादकता को दीर्घकालीन रूप से बनाए रखा जा सके।

समेकित पोषक तत्व प्रबंधन के मुख्य घटक

समेकित पोषण प्रबंधन का उद्देश्य मृदा की दीर्घकालीन उर्वरता बनाए रखते हुए फसल की अधिकतम उत्पादकता सुनिश्चित करना है। यह तभी संभव है जब सभी प्रकार के पोषक तत्वों के स्रोतों–रासायनिक, जैविक और जैविक रूप से सक्रिय घटकों–का संतुलित और समन्वित उपयोग किया जाए। समेकित पोषक तत्व प्रबंधन के मुख्य घटकों का विस्तृत विवरण दिया गया है।

1. रासायनिक उर्वरक

ये कारखानों में निर्मित उर्वरक होते हैं जो आवश्यक पोषक तत्वों (मुख्य एवं सूक्ष्म पोषक तत्व) को जल्दी और सीधे फसल को उपलब्ध कराते हैं।

- नाइट्रोजन–यूरिया, कैल्शियम अमोनियम नाइट्रेट
- फॉस्फोरस–सिंगल सुपर फॉस्फेट, डाय–अमोनियम फॉस्फेट)
- पोटाश – म्यूरेट ऑफ पोटाश
- सूक्ष्म पोषक तत्व, जिंक सल्फेट, फेरस सल्फेट, बोरेक्स आदि

लाभ
- पौधों की तीव्र वृद्धि हेतु त्वरित पोषक तत्व आपूर्ति
- प्रारंभिक अवस्था में पोषक तत्वों की उच्च मांग की पूर्ति
- उच्च उपज प्राप्त करने में सहायक
- पोषक तत्वों की उपलब्धता और उपयोग दक्षता बढ़ती है।
- निक्षालन और गैसीय हानि कम होती है।

2. जैविक खाद

- ऐसे पोषण स्रोत जो प्राकृतिक कार्बनिक अवशेषों, पशु मल–मूत्र और पौधों से बने होते हैं। ये धीरे–धीरे पोषक तत्व प्रदान करते हैं और मृदा की संरचना सुधारते हैं।

- धान रोपाई से 15–20 दिन पहले हरी खाद की जुताई करना उपयोगी होता है।
- गोबर की खाद
- कम्पोस्ट, नाडेप खाद
- वर्मी कम्पोस्ट (केंचुआ खाद)
- हरी खाद जैसे ढैंचा, सनाई
- फसल अवशेष

लाभ
- मृदा में जैविक पदार्थ बढ़ाते हैं
- सूक्ष्मजीवों की संख्या और गतिविधि में वृi)
- जल धारण क्षमता, मृदा संरचना एवं वायुरध्रता में सुधार
- पोषक तत्वों का धीरे–धीरे अपघटन कर लंबे समय तक आपूर्ति

3. जैव उर्वरक

यह जीवित सूक्ष्मजीवों (बैक्टीरिया, कवक, शैवाल आदि) से बने उत्पाद होते हैं जो पौधों को पोषक तत्व उपलब्ध कराने में सहायता करते हैं।

जैव उर्वरक	कार्य
एजोटोबैक्टर, एजोस्पिरिलम	स्वतंत्र नाइट्रोजन स्थिरीकरण
राइजोबियम	दलहनी फसलों में सहजीवी नाइट्रोजन स्थिरीकरण
फॉस्फोबैक्टीरिया	फॉस्फोरस को घुलनशील बनाना
पोटाश सोल्यूलाईजिंग बैक्टीरिया	पोटाश को घुलनशील बनाना
माइकोराइजा	सूक्ष्म पोषक तत्वों का अवशोषण
जैव उर्वरक	**कार्य**
ब्लू–ग्रीन अल्गी	धान की खेतों में नाइट्रोजन स्थिरीकरण

लाभ
- रासायनिक उर्वरकों की निर्भरता को कम करते हैं
- मृदा जैव विविधता को बढ़ाते हैं
- सस्ते, पर्यावरण अनुकूल और टिकाऊ होते हैं

4. फसल अवशेष प्रबंधन

फसल कटाई के बाद खेत में बची हुई पत्तियाँ, तनों और भूसी को जलाने की बजाय जैविक खाद या जैविक मल्च के रूप में प्रयोग करना।

लाभ
- मिट्टी में जैविक कार्बन की मात्रा बढ़ाता है
- पोषक तत्वों की पुनः पूर्ति
- जल संरक्षण, पर्यावरणीय प्रदूषण एवं मृदा क्षरण में कमी

5. मल्टी न्यूट्रिएंट और स्लो रिलीज उत्पाद

प्रकार
- नीम लेपित यूरिया
- सल्फर कोटेड उर्वरक
- मिक्स्ड फर्टिलाइजर

लाभ
- पोषक तत्वों की धीमी और सतत आपूर्ति
- लीचिंग, वाष्पीकरण जैसी हानियों में कमी
- उर्वरक की उपयोगिता बढ़ती है

6. पोषक तत्वों की समयानुसार आपूर्ति

- विभिन्न फसल अवस्थाओं–रोपाई, फूटान, पुष्पन, दाना भराव – के अनुसार उर्वरकों का विभाजित रूप में प्रयोग करना

लाभ
- पोषक तत्वों की अधिकतम उपयोगिता
- अनावश्यक हानि से बचाव
- पौधे की वास्तविक आवश्यकतानुसार आपूर्ति

7. मृदा परीक्षण आधारित पोषक तत्व प्रबंधन एवं स्थान विशेष की जरूरत के अनुसार समायोजन फसल की आवश्यकताओं के अनुरूप स्थान और समय पर मिट्टी के पोषक तत्वों की आपूर्ति को अनुकूलित करता है।

- प्रत्येक 2–3 वर्ष में मृदा परीक्षण करवाना चाहिए ताकि यह पता चल सके कि मृदा में कौन–कौन से पोषक तत्वों की कमी या अधिकता है।

लाभ
- सटीक पोषण प्रबंधन
- अधिकतम लाभ और कम लागत
- मृदा और पर्यावरण का संरक्षण

8. सूक्ष्म पोषक तत्वों का समावेश

जिंक, बोरॉन जैसे तत्वों की पूर्ति आवश्यक है, विशेषकर जिन क्षेत्रों में इनकी कमी पाई जाती है।

- जिंक सल्फेट 25 किलो/हेक्टेयर सामान्य मात्रा मानी जाती है।
- फोलियर स्प्रे (पत्तियों पर छिड़काव) भी किया जा सकता है।

लाभ
- पौधों में रोग प्रतिरोधक क्षमता बढ़ती है।
- उत्पाद की गुणवत्ता में सुधार होता है।

समेकित पोषण प्रबंधन में पोषक तत्वों के प्रयोग की विधियाँ

1. विभाजित मात्रा में उर्वरक देना
- नाइट्रोजन की एकमुश्त आपूर्ति नहीं कर के 2–3 चरणों में देना

1/3 रोपाई पर, 1/3 टिलरिंग पर एवं 1/3 पैनिकल इनिशिएशन पर
- इससे नाइट्रोजन का अपव्यय नहीं होता और फसल को आवश्यकता अनुसार नाइट्रोजन मिलती रहती है।

2. जैविक खाद की प्रारंभिक आपूर्ति
- कम्पोस्ट या हरी खाद खेत तैयारी के समय मिलाई जाती है। यह धीरे–धीरे पोषक तत्व छोड़ती है, जो शुरू से लेकर फसल कटाई तक काम आते हैं।

3. जैव उर्वरकों का बीज या जड़ उपचार
- एजोस्पिरिलम जैसे जैव उर्वरक बीज या नर्सरी पौधों की जड़ों पर लगाए जाते हैं, जिससे वे फसल की आरंभिक अवस्था में पोषक तत्व उपलब्ध कराते हैं।

4. सूक्ष्म पोषक तत्वों का फोलियर स्प्रे
- जिंक, बोरॉन जैसे तत्व फसल की मध्यम से अंतिम अवस्था में पत्तियों पर छिड़के जाते हैं ताकि तुरंत अवशोषण हो सके।

5. कोटेड और स्लो–रिलीज उर्वरकों का प्रयोग
- नीम लेपित यूरिया और सल्फर कोटेड उर्वरक धीरे–धीरे घुलते हैं और 25–30 दिनों तक नाइट्रोजन उपलब्ध कराते हैं। इससे एक बार देने पर भी दीर्घकालिक आपूर्ति बनी रहती है।

6. मृदा की उर्वरता अनुरूप उर्वरक समायोजन
- मृदा परीक्षण रिपोर्ट के आधार पर पता चलता है कि किस तत्व की कमी या अधिकता है। उसी अनुसार पोषण का समय और मात्रा तय की जाती है।

समेकित पोषण प्रबंधन की आवश्यकताए

धान जैसी महत्त्वपूर्ण खाद्यान्न फसल की उत्पादकता को निरंतर बनाए रखने और मृदा की दीर्घकालीन उर्वरता को सुरक्षित रखने के लिए "समेकित पोषण प्रबंधन" की आवश्यकता अत्यंत महत्वपूर्ण है।

1. मृदा उर्वरता के क्षरण को रोकना
- लगातार रासायनिक उर्वरकों का अधिक मात्रा में प्रयोग मृदा की जैविक गुणवत्ता को खराब कर देता है। इससे मृदा की संरचना, सूक्ष्मजीव गतिविधि, और जल धारण क्षमता घट जाती है।

- समेकित पोषण प्रबंधन में जैविक खाद और जैव उर्वरकों का प्रयोग मृदा की भौतिक, रासायनिक और जैविक गुणवत्ता को बनाए रखता है।
- इससे दीर्घकालिक मृदा उर्वरता बनी रहती है और फसल उत्पादन में स्थायित्व आता है।

2. पोषक तत्वों की असंतुलन समस्या का समाधान
- जब केवल एक या दो तत्वों (जैसे नाइट्रोजन और फॉस्फोरस) पर ध्यान दिया जाता है, तो अन्य पोषक तत्व जैसे जिंक, सल्फर, बोरॉन की कमी हो जाती है, जिससे उत्पादन घटता है।

- समेकित पोषण प्रबंधन में सभी आवश्यक पोषक तत्वों की आपूर्ति संतुलित रूप में की जाती है। जिससे फसल को समयबद्ध रूप से पोषण मिलता है और हानि कम होती है।

3. उत्पादन लागत में कमी
- रासायनिक उर्वरक महंगे होते जा रहे हैं और कई बार इनकी उपलब्धता भी समय पर नहीं होती। INM द्वारा पोषक तत्वों की संतुलित आपूर्ति से पौधों की वृद्धि बेहतर होती है।

- इससे दाने की गुणवत्ता द्धजैसे प्रोटीन, स्टार्च, चमक आदिऋ में भी सुधार होता है।
- लबे समय में स्थिर और अधिक उत्पादन प्राप्त होता है।
- जैविक खाद और जैव उर्वरक स्थानीय संसाधनों से बन सकते हैं, जिससे लागत में कमी आती है और ग्रामीण संसाधनों का संरक्षण होता है।

4. पर्यावरण संरक्षण
- रासायनिक उर्वरकों का अत्यधिक प्रयोग जल स्रोतों को प्रदूषित करता है, जिससे जलाशयों में यूट्रॉफिकेशन होता है और मानव स्वास्थ्य पर प्रभाव पड़ता है। जैविक खादें और जैव उर्वरक पर्यावरण अनुकूल होते हैं और मिट्टी के पारिस्थितिकी तंत्र को सुरक्षित रखते हैं।

- समेकित पोषण प्रबंधन से नाइट्रोजन लीचिंग, जल प्रदूषण और ग्रीनहाउस गैस उत्सर्जन कम होता है।

5. फसल उत्पादकता में स्थायित्व
- प्रारंभिक वर्षों में रासायनिक उर्वरकों से उत्पादन बढ़ता है, परंतु दीर्घकाल में मृदा की गुणवत्ता गिरने लगती है, जिससे उत्पादकता घट जाती है।
- समेकित पोषण प्रबंधन दीर्घकालिक उत्पादन बनाए रखने में सहायक है।

6. सूक्ष्मजीवों की गतिविधि को बढ़ावा
- मृदा में पाये जाने वाले सूक्ष्मजीव पोषक तत्वों की उपलब्धता बढ़ाने, जैविक पदार्थों के अपघटन और मृदा की संरचना सुधारने में सहायक होते हैं।
- जैव उर्वरकों से सूक्ष्मजीवों को पोषण मिलता है, जिससे मृदा अधिक जीवंत और उपजाऊ बनती है।

7. जैविक कृषि की ओर कदम
- समेकित पोषण प्रबंधन जैविक और पारंपरिक कृषि के बीच एक सेतु का कार्य करता है। यह किसानों को पूरी तरह से जैविक खेती अपनाने से पहले एक संतुलित और व्यावहारिक विकल्प देता है।
- यह परिवर्तन की दिशा में एक समायोजन प्रदान करता है।

8. पोषण सुरक्षा और खाद्य गुणवत्ता में सुधार

- केवल उर्वरकों से उगाई गई फसलें कई बार पोषक तत्वों से रहित होती हैं, जिससे उपभोक्ताओं के स्वास्थ्य पर असर पड़ता है।
- समेकित पोषण प्रबंधन से उपज का पोषण स्तर बेहतर होता है, जैसे अनाज में आयरन, जिंक आदि की मात्रा संतुलित रहती है।

9. टिकाऊ एवं जलवायु अनुकूल खेती

- रासायनिक उर्वरकों का अधिक उपयोग ग्रीनहाउस गैसों (नाइट्रस ऑक्साइड) का उत्सर्जन करता है।
- समेकित पोषण प्रबंधन में जैविक खादों का समावेश होने से यह उत्सर्जन नियंत्रित होता है।
- समेकित पोषण प्रबंधन प्रणाली से मिट्टी का कार्बन भंडारण बढ़ता है जो जलवायु परिवर्तन की दृष्टि से सकारात्मक है।
- यह प्रणाली सूखा, बाढ़ जैसी स्थितियों में मिट्टी की गुणवत्ता बनाए रखने में सहायक होती है।

10 .पोषक तत्वों का पुनर्चक्रण

- समेकित पोषण प्रबंधन में फसल अवशेषों, गोबर, नाडेप खाद, हरी खाद आदि का प्रयोग होता है, जिससे कृषि प्रणाली में पोषक तत्वों का चक्र बनता है।
- यह प्रणाली स्थायी कृषि की दिशा में महत्त्वपूर्ण कदम है।

धान उत्पादन में समेकित पोषण प्रबंधन द्वारा पोषक तत्वों की समय पर आपूर्ति

धान की उच्च उत्पादकता और बेहतर गुणवत्ता सुनिश्चित करने के लिए पोषक तत्वों की समय पर और संतुलित आपूर्ति अत्यंत आवश्यक है। समेकित पोषण प्रबंधन इस कार्य में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है क्योंकि यह विभिन्न स्रोतों (जैविक, रासायनिक, जैव उर्वरक) से पोषक तत्वों की आपूर्ति को फसल की आवश्यकता अनुसार विभिन्न अवस्थाओं में सुनिश्चित करता है।

वृद्धि अवस्था	समय	आवश्यक पोषक तत्व	समेकित पोषण प्रबंधन के माध्यम से आपूर्ति
1. रोपाई पूर्व, नर्सरी अवस्था	बीज अंकुरण से 20–25 दिन	नाइट्रोजन फॉस्फोरस जिंक	गोबर की खाद, जैव उर्वरक, जिंक सल्फेट
2. रोपाई के समय	20–30 दिन	नाइट्रोजन फॉस्फोरस पोटाश	1/3 नाइट्रोजन + पूर्ण फॉस्फोरस + 1/2 पोटाश, जैविक खाद, जैव उर्वरक
3. फूटान अवस्था	रोपाई के 25–35 दिन बाद	नाइट्रोजन सल्फर जिंक	शेष 1/3 नाइट्रोजन जिंक फोलियर स्प्रे, नीम–लेपित यूरिया
4. फूल आने से पहले	50–55 दिन	नाइट्रोजन फास्फोरस पोटैशियम	अंतिम 1/3, शेष फास्फोरस पोटैशियम की आवश्यकता हो तो
5. दाना भराव अवस्था	70–90 दिन	जिंक बोरोन मैग्नीशियम	सूक्ष्म पोषक तत्वों का फोलियर स्प्रे, जैव उर्वरक प्रभाव

धान उत्पादन में समेकित पोषण प्रबंधन न केवल उपज को बढ़ाने का साधन है, बल्कि यह मृदा स्वास्थ्य, पर्यावरणीय स्थिरता एवं आर्थिक लाभ को भी सुनिश्चित करता है। अतः किसानों को रासायनिक उर्वरकों के साथ जैविक और जैव उर्वरकों का समुचित मिश्रण अपनाकर एक सतत कृषि प्रणाली की ओर बढ़ना चाहिए।

''अभिनव कृषि'' अंकवार प्रकाशित होने वाली विषय सामग्री

अंक	प्रकाशन माह	विषय–विशेषांक
1	जून	खरीफ फसल विशेषांक, खरीफ फसलों में समन्वित कीट, रोग व खरपतवार, प्रबंधन, मृदा एवं जल संरक्षण
2	सितम्बर	रबी फसल विशेषांक, रबी फसलों में समन्वित कीट, रोग व खरपतवार प्रबंधन, उन्नत कृषि उपकरण
3	दिसम्बर	सिंचाई प्रबंधन, मृदा स्वास्थ्य प्रबंधन, जैविक खेती, समन्वित कृषि प्रणाली, आधुनिक डेयरी, मधुमक्खी पालन, मशरूम उत्पादन, एकीकृत पोषक तत्व प्रबंधन
4	मार्च	जायद खेती, संरक्षित खेती, हाई–टेक बागवानी, फल–फूल, सब्जी उत्पादन, मृदा प्रबंधन, पशुपालन प्रबंधन, फल सब्जी परिरक्षण एवं खाद्य प्रसंस्करण

✺✺✺

तिल की फसल के प्रमुख रोग, कीट एवं रोकथाम

किरण कुमावत

पादप रोग विज्ञान विभाग, राजस्थान कृषि महाविद्यालय, म. प्र. कृ. प्रौ. वि. वि., उदयपुर

तिल का वानस्पतिक नाम सिसेमम इण्डिकम एवं कुल पेडालिएसी है। तिल को सामान्यतः तीली के नाम से भी जाना जाता है। तिल सीधा, 30–60 सेमी ऊँचा, तीखे महक वाला, शाखित अथवा अशाखित, शाकीय पौधा है। इसका तना सूक्ष्म अथवा रोम वाला, ऊपरी भाग की शाखाएं एवं तना चतुष्कोणीय एवं खांचयुक्त होती हैं। भारत में भी इसकी खेती और इसके बीज का उपयोग हजारों वर्षो से होता आया है। यह व्यापक रूप से दुनिया भर के उष्णकटिबंधीय क्षेत्रों में पैदा किया जाता है। भारत मे तिल का उत्पादन उत्तर प्रदेश, राजस्थान, मध्य प्रदेश, गुजरात आदि प्रदेशो में किया जाता है। तिल की खेती मैदानी क्षेत्र में अच्छी होती है। तिल के बीज से खाद्य तेल निकाला जाता है। आयुर्वेद में औषधि के रुप में काले तिलों से प्राप्त तेल अधिक उत्तम समझा जाता है।

यह फसल फूल या फल आने की अवस्था में अधिक पाला, सूखा, नम मौसम या पानी का जमाव हो जाने की स्थिति को सहन नहीं कर सकती है। तिल की खेती में अनेक प्रकार के कीट और रोग की समस्या आती है। अतः सही समय पर इनका नियंत्रण करना आवश्यक होता है।

प्रमुख रोग

1. फायलोडी रोग

यह रोग फाइटोप्लाज्मा के द्वारा होता है एवं इस रोग में पुष्प के विभिन्न भाग विकृत होकर पत्तियों के समान हो जाते हैं। संक्रमित पौधों में पत्तियाँ गुच्छों में छोटी–छोटी दिखाई देती हैं और पौधों की वृद्धि रुक जाती है। रस चूसक कीट इस रोग को स्वस्थ फसल में फेलाने का काम करते हैं। (चित्र 1)

रोकथाम

- इस रोग में ग्रसित पौधे के बचाव के लिये रोग ग्रस्त पौधों को उखाड़ कर नष्ट कर देना चाहिये।
- डाइमिथाएट 30 ईसी 500 मिली/हेक्टेयर की दर से छिड़काव करें।

2. अल्टरनेरिया पत्ति धब्बा

यह अलटरनेरिया नामक कवक से होता है इस रोग में पौधों की पत्तियों में छोटे–छोटे भूरे रंग के धब्बे पड़ जाते हैं, धब्बों में छल्ले की तरह संरचना बनती हैं और कुछ दिन बाद पत्तियाँ सूख कर झड़ जाती हैं। (चित्र 2)

रोकथाम

- कम से कम 2 साल तक फसलचक्र अपनायें।
- इस रोग के बचाव के लिये स्वस्थ बीज का चयन करना चाहिये।
- बुवाई से पहले बीज उपचार करना चाहिए जिसके लिये थाईराम 2 ग्राम प्रति कि.ग्रा. बीज दर एवं 18–20 घंटो के अंतराल के बाद ट्राइकोडर्मा विरडी 10 ग्राम प्रति कि.ग्रा. बीज दर से बिजोपचार करना चाहिये।
- खड़ी फसल में लक्षण दिखाई देने पर मैन्कोजेब 75 डब्ल्यू सी का 0.25% (2.5 ग्राम/लीटर), थाईराम 2 ग्राम प्रति लीटर पानी का घोल बनाकर छिड़काव करना चाहिये।

3. फाइटोफ्थोरा अंगमारी

यह मुख्यतः फाइटोफ्थोरा पैरसिटिका नामक कवक से होता है सभी आयु के पौधों पर इसका प्रकोप हो सकता है। इस रोग के लक्षण पौधों की पत्तियो एवं तनों पर दिखाई देते हैं। इस रोग में प्रारम्भ में पत्तियों पर छोटे भूरे रंग के शुष्क धब्बे दिखाई देते हैं ये धब्बे बड़े होकर पत्तियों को झुलसा देते है तथा ये धब्बे बाद में काले रंग के हो जाते हैं। रोग ज्यादा फैलने से पौधा मर जाता है। (चित्र 3)

रोकथाम

- एक खेत में लगातार तिल की बुआई न करें।
- खड़ी फसल में रोग दिखने पर पूर्व मिश्रित फफूंदनाशी दवा (मैन्कोजेब 64%+मेटालैक्सिल 8%) 75 डब्ल्यूपी 3 ग्राम ग्राम प्रति लीटर पानी का घोल बनाकर 10 दिन के अन्तराल पर छिड़काव करना चाहिए।
- फसल पर रोग के लक्षण दिखने पर मैन्कोजेव 1.5 किग्रा. या कैप्टान 2 से 2.5 किग्रा. प्रति हेक्टेयर कि दर से छिड़काव करें व 15 दिन बाद पुनः छिड़काव करें।

4. सरकोस्फोरा पत्ती धब्बा

यह मुख्यतः सरकोस्फोरा सिसमी नामक कवक से होता है इस रोग को टिक्का रोग के नाम से भी जाना जाता है। इस रोग में पत्तियों में छोटे–छोटे अनियंत्रित भूरे रंग के धब्बे बन जाते हैं और पत्तियाँ सूख कर गिर जाती हैं। (चित्र 4)

रोकथाम

- इस रोग से बचाव के लिये carbendazim 50 डब्ल्यूपी का 2 ग्राम प्रति किग्रा से बीजोपचार करना चाहिये।
- फसल में रोग के लक्षण दिखने पर मैंकोजेब 0.25% (2.5 ग्राम) प्रति लीटर पानी का छिड़काव करना चाहिये तथा एक सप्ताह बाद पुनः छिड़काव करना चाहिये।

5. पाउडरी मिल्डयू

यह रोग कवक के द्वारा होता है इस रोग में पौधों की पत्तियों के ऊपरी सतह पर पाउडर जैसा सफेद चूर्ण दिखाई देता है। इस रोग का संक्रमण फसल में 45 दिन से लेकर फसल पकने तक होता है। (चित्र 5)

रोकथाम

- इस रोग के नियंत्रण के लिये 25 किग्रा. सल्फर धूल का भुरकाव करना चाहिये।
- घुलनशील सल्फर 80 डब्लू पी का 2 ग्राम प्रति हेक्टेयर कि दर से खड़ी फसल में 10 दिन के अन्तराल में 3 बार छिड़काव करना चाहिये।
- रोगरोधी किस्मों का उपयोग करना चाहिये जैसे RT-125, श्वेता आदि।

6. तना एवं मूल विगलन

यह रोग मैक्रोफोमिना फैसियोलिना कवक के द्वारा होने वाला तिल का प्रमुख रोग है। इस रोग से प्रभावित पौधे की जड़ रोगग्रस्त व तना भूरे रंग का हो जाते हैं। (चित्र 6)

रोकथाम

- कम से कम 2 साल तक फसलचक्र अपनायें।
- खड़ी फसल में रोग प्रारम्भ होने पर 2 ग्राम कार्बेडाजिम को प्रति लीटर पानी में घोल बना कर छिड़काव करना चाहिये एवं प्रकोप अधिक होने पर एक सप्ताह बाद पुनः उसे दोहराना चाहिये।

प्रमुख कीट

1. बिहार की रोयेदार इल्ली (स्पिलोसोमा ओब्लिका)

प्रकोप के लक्षण

इसे रोमिल या कम्बल कीट के नाम से भी जाना जाता है, यह एक बहु भक्षी कीट है। इसकी नवजात इल्ली तिल की पत्तियों को समूह में खाती हैं। पत्तियां छलनी की तरह दिखाई देती हैं, जिससे पौधे कमजोर हो जाते हैं और फलिया कम बनती हैं इसका आक्रमण सितम्बर और अक्टूबर माह में अधिक होता है। (चित्र 7)

नियंत्रण

- लार्वा के शिकार की सुविधा के लिए 40-50 / हेक्टेयर की दर से पक्षियों के बैठने के लिए T आकार की पक्षी आश्रय बनाएं।
- वयस्कों को पकड़ने के लिए प्रति हेक्टेयर एक प्रकाश जाल स्थापित करें।
- नीम के बीज की गुठली का अर्क (एनएसकेई) 5% या क्लोरपाइरीफोस 20 ईसी / 1.5 मिली / लीटर या क्विनालफॉस 25ईसी / 1.5 मिली / लीटर या एसीफेट 75 एसपी / 1.5 ग्राम / लीटर या इंडोक्साकार्ब 15.8 ईसी / 0.5 मिली / लीटर का छिड़काव करें।

2. पत्ती वेबर या रोलर और कैप्सूल छेदक (एंटीगैस्ट्रा कैटालुनालिस)

प्रकोप के लक्षण

इस कीट के प्रकोप से जड़ की वृद्धि रुक जाती है एवं पौधे की प्रारम्भिक अवस्था में आक्रमण होने से पौधा नष्ट हो जाता है। इसकी इल्लिया फूल और फली बनने के समय अधिक आक्रमण करती हैं फसल पर पहली बार आक्रमण 15 दिन की अवस्था पर होता है।

यह कीट पत्तियों को गुथकर फलों में घुसकर भीतरी भाग दबाकर तथा फल में अंदर भाग को खाकर फसल को नुकसान पहुंचाता है। संक्रमण की प्रारंभिक अवस्था में पौधा बिना कोई शाखा या अंकुर निकले ही मर जाता है। हमले के बाद के चरण में, संक्रमित अंकुर बढ़ना बंद कर देते हैं। फूल आने पर, लार्वा फूलों के अंदर भोजन करते हैं और कैप्सूल बनने पर, लार्वा कैप्सूल में घुस जाते हैं और विकसित हो रहे बीजों को खाते हैं। यह कीट जुलाई से सितम्बर के दौरान सक्रिय रहता है। (चित्र 8)

नियंत्रण

- फसल की बुआई जल्दी करें।
- पौधे के विकास के प्रारंभिक चरण के दौरान पत्ती के जाले से लार्वा को इकट्ठा करें और नष्ट करें।
- लार्वा के शिकार की सुविधा के लिए 40–50 / हेक्टेयर की दर से पक्षियों के बैठने के लिए ज आकार के पक्षी आश्रय बनाएं।
- नीम के बीज की गुठली का अर्क (एनएसकेई) 5% या नीम का तेल / 5 मिली / लीटर या स्पिनोसैड 45 एससी / 0.2 मिली / लीटर या फ्लुबेंडियामाइड 480 एससी / 0.3 मिली/लीटर या क्लोरेंट्रानिलिप्रोल 18.5 एससी / 0.4 मिली/लीटर या क्विनालफॉस 25ईसी / 2 मिली/लीटर का छिड़काव करें।

3. पित्त मक्खी (एस्फोन्डिलिया सेसामी) और बड मक्खी (डासीनुरा सेसामी)

प्रकोप के लक्षण

कीड़े फूलों की कली के अंदर भोजन करते हैं, यह फूल के आवश्यक अंगों को नष्ट कर पीत बनाते हैं, जिससे पित्त जैसी संरचना बनती है जो फूल कैप्सूल में विकसित नहीं होती है। प्रभावित कलियाँ सूखकर गिर जाती हैं। इनका आक्रमण खरीफ के मौसम में सितम्बर के महीने में कालियां निकलते समय होता है और नवम्बर के अंत तक सक्रिय रहते हैं। (चित्र 9)

नियंत्रण

- कलियाँ निकलते समय फसल पर 0.03 प्रतिशत डाइमेथोएट का या 0.05 प्रतिशत प्रति हेक्टेयर की दर से छिड़काव करें।
- नीम के बीज की गुठली का अर्क (एनएसकेई) 5% या क्विनालफॉस 25ईसी / 1.5 मिली/लीटर या इमिडाक्लोप्रिड 17.8 एसएल / 0.3 मिली/लीटर का छिड़काव कली निकलने के समय में करें।

4. तिल का पत्ता फुदका (ओरोसियस एल्बिकिंटस)

प्रकोप के लक्षण

जैसिड या लीफहॉपर तिल का एक गंभीर कीट है और फाइलोडी रोग फैलाने के लिए जाना जाता है। निम्फ और वयस्क पौधों के कोमल भागों का रस चूसते हैं। कीट के प्रकोप से पत्तियों के किनारे मुड़ जाते हैं, पत्तियाँ लाल या भूरे रंग की हो जाती हैं और फिर सूखकर गिर जाती हैं। यह कीट वानस्पतिक अवस्था से कैप्सूल अवस्था तक सक्रिय रहता है। (चित्र 10)

नियंत्रण

- नीम के बीज की गुठली का अर्क (एनएसकेई) 5% या डाइमेथोएट 30 ईसी / 1.5 मिली/लीटर या ऑक्सीडेमेटोन मिथाइल 25 ईसी / 1.5 मिली/लीटर या इमिडाक्लोप्रिड 17.8 एसएल / 0.3 मिली/लीटर या एसिटामिप्रिड 20 एसपी / 0.3 ग्राम/लीटर या थायामेथोक्सम 25 डब्लूजी / 0.3 ग्राम /लीटर का छिड़काव करें। एल दर से छिड़काव करें।

5. हॉक मॉथ या स्फिंक्स कैटरपिलर (एचेरोंटिया स्टाइक्स)

क्षति के लक्षण

कैटरपिलर पत्तियों को खाते हैं और पौधे को नष्ट कर देते हैं। यह कीट पूरे फसल मौसम में नई और विकसित फसल पर सक्रिय रहता है। (चित्र 11)

नियंत्रण

- गहरी जुताई से कीटभक्षी पक्षियों के शिकार के लिए प्यूपा उजागर हो जाता है, कैटरपिलर का संग्रहण एवं विनाश।
- नीम के बीज की गिरी का अर्क (एनएसकेई) 5% या क्विनालफॉस 25ईसी/ 1.5 मिली/लीटर या क्लोरपाइरीफोस 20 ईसी / 2 मिली/लीटर की दर से छिड़काव करें।

***

चौडी क्यारी कूँड (बी.बी.एफ) : जलवायु अनुकूलन सोयाबीन उत्पादन की उन्नत विधि

उदिती धाकड़, शालिनी मीणा, के.एम.शर्मा एवं चमन कुमारी जादौन

शस्यविज्ञान विभाग, कृषि महाविद्यालय, उम्मेदगंज, (कृषि महाविद्यालय), कोटा

भारत के राज्यों जैसे–मध्यप्रदेश, महाराष्ट्र, राजस्थान, तमिलनाडू, आन्ध्रप्रदेश आदि में सोयाबीन की खेती मुख्य रुप से खरीफ में की जाती है। विगत दशक में सोयाबीन की उत्पादन एवं उत्पादकता (871 किग्रा/हैक्टर) में काफी कमी आंकी गई है। सोयाबीन की खेती खरीफ यानि वर्षा के मौसम में की जाती है तथा सम्पूर्ण फसलावधि में यह जलवायु के विभिन्न कारको विशेषतः वर्षा के अधिक होने या कम होने से अत्यधिक प्रभावित होती है। विगत वर्षो में जलवायु परिवर्तन एव मानसून की अनिश्चितता तथा असमान्य परिस्थितयों के उत्पन्न होने से सोयाबीन बुवा से लेकर कटा तक प्रभावित होती है। सोयाबीन की खेती पूर्णतः मानसून आधारित है तथा वर्षा के व्यवहार के कारण बुवाई हेतु काफी कम समय मिल पाता है। प्रायः बुवाई के तुरन्त पश्चात या शुरुआती फसल वृद्धि काल में अत्यधिक बारिश होने से अकुरंण काफी प्रभावित होता है अथवा फसल जलमग्न होकर प्रभावित होती है। फसल अवधि में बारिश कम होने से पानी की कमी से भी फसल प्रभावित होती है। ऐसी दोनों परिस्थितियों में सफल सोयाबीन उत्पादन हेतु चौडी क्यारी कुँड (Broad Bed Furrow) विधि काफी अच्छी एवं कारगर साबित हो सकती है। विभिन्न अनुसंधानो से यह साबित हो चुका है कि अत्यधिक वर्षा या कम वर्षा दोनों स्थितियों में चौडी क्यारी एव कुँड विधि काफी लाभदायक है। मध्यप्रदेश के सोयाबीन उत्पादन क्षेत्रों जैसे मालवा, इन्दौर, महाराष्ट्र आदि के क्षेत्रों में कृषक इस विधि से सोयाबीन का सफल एवं अच्छा उत्पादन ले रहे है। राजस्थान के हाडौती अचंल में भी यदि चौडी क्यारी कुँड (B.B.F.) विधि से सोयाबीन की खेती की जाए तो अच्छा उत्पादन एंव उत्पादकता प्राप्त की जा सकती है। कृषि विश्वविद्यालय, कोटा के कृषि अनुसंधान केन्द्र, कोटा के वैज्ञानिकों द्वारा इस विधि पर अनुसंधान कर सिफारिस की जा चुकी है तथा कृषि विज्ञान केन्द्र, कोटा व झालावाड़ द्वारा भी इसके प्रदर्शन कृषकों के खेतों पर लगाकर इसकी सार्थकता सफल पाई है। अब केवल, प्रश्न इसकी तकनीकियों एवं विस्तृत जानकारी का है, तो इस विधि की बुवाई मशीन राष्ट्रीय सोयाबीन अनुसंधान संस्थान इन्दौर के पूर्व कृषि अभियांत्रिकी वैज्ञानिक डॉ. डी. बी. सिंह द्वारा विकसित कर विभिन्न संस्थाओं के माध्यम से कृषकों को उपलब्धता पूर्व मे ही सुनिश्चित की जा चुकी है।

बी.बी.एफ. तकनीकी हेतु खेत की तैयारी : गर्मियों में खेत को मिट्टी पलटने वाले हल से जुताई कर, 1–2 जुताई डिस्क प्लो से करे। मानसून आने से पूर्व खेत में अन्तिम जुताई से पूर्व 10–15 टन गोबर की सडी हुई खाद डालकर, डिस्क प्लो या .हैरो से क्रिस क्रिस जुताई कर भूमि को भुरभरा कर ले, इसके लिए रोटोवेटर को भी काम में किया जा सकता है तथा पाटा लगाकर खेत को समतल कर ले तथा इसके उपरान्त बी.बी. एफ. मशीन से बुवाई करें।

बी.बी.एफ. पद्धिति से बुवाई : बी.बी.एफ. पद्धिति में सोयाबीन की बुवाई बी.बी.एफ. प्लांटर द्वारा की जाती है। इसमें उर्वरक एवं बीज के लिए दो अलग–अलग पेटी होती है। बुवाई से पूर्व सोयाबीन बीज को सिफारिशानुसार 3 ग्राम थाइरस या 1 ग्राम कार्बेण्डेजिम से उपचारित करें तथा 80 किलो प्रति हैक्टर की दर से अच्छे अंकुरण वाला उन्नत किस्में जैसे एन आर सी138, आर वी एस एम 2011–35, जे एस 20–116, जे एस 20–98, जे एस 20–94 का बीज काम में लेवें। बी.बी.एफ. पद्धिति में बीज की कम मात्रा लगती है। ब्रोड बेड फरों में 3–5 फरो ओपनरों के साथ साइड में 2 कूँड सीधे बनते जाते है तथा बोये गये बीजों को मिट्टी के एक साथ ढंकने की सुविधा भी होती है। जहाँ तक सम्भव हो सके बेड व कुँड सीधे बनने चाहिए ताकि जल भराव होने की स्थिति में अतिरिक्त वर्षा जल आसानी से निकाला जा सके। बी.बी. एफ. में उभरी हुई चौडी क्यारियाँ लगभग 90–120 सेमी. चौडी या 120–180 सेमी. बी.बी.एफ. मशीनानुसार तथा उनके बीच में कूँड (फरो) 45 सेमी. चौडी बनती है। चौडी क्यारियों में सोयाबीन की पंक्ति से पंक्ति की दूरी 30 सेमी रखी जाती है। ब्रॉड बेड फरो विधि को मूल रूप से सोयाबीन के खेतों में पानी की समस्या से निजात पाने के लिए विकसित किया गया है। यह विधी हल्की एवं मध्यम काली मिट्टी वाले क्षेत्रों हेतु अधिक उपयुक्त पायी गयी है।

ब्रॉड बेड फरो मशीन : बी.बी.एफ. बुवाई मशीन सामान्यतः सीड कम फर्टी ड्रिल की तरह ही होती है परन्तु बी.बी.एफ. मशीन में कुछ तकनीकी एवं यांत्रिक बदलाव किये गये हैं। इसमें भी बीज एवं उर्वरक के लिए दो अलग–अलग पेटी होती है जिसमें उर्वरक बीज के नीचे डाला जाता है। इस प्लांटर से बुवाई करने पर बुवाई के समय 1 या 2 चोडी क्यारी (बेड) बनती है जिसमे सोयाबीन की 3–4 कतारे बनती है तथा बगल (साइड) में एक नाली (कूँड) लगभग 45 सेमी का साथ–साथ ही बनती जाती है। नाली की चौडा मोल्ड बोर्ड के पंख की चौडाई को भी आवश्यकतानुसार बढाया या घटाया जा सकता है ताकि उच्च बेड तथा नाली की चौड़ाई को बढाया–घटया जा सके। भारतीय सोयाबीन अनुसंधान संस्थान, इन्दौर द्वारा विकसित बी.बी.एफ. मशीन में प्रत्येक 4–5 पक्तियों के बाद एक गहरी नाली बनती है जिसकी चौडाई 30–45 सेमी. होती है तथा गहराई 10–15 सेमी रहती है। बी.बी.एफ. व राइज्ड बेड मशीन की कीमत लगभग 50000–70000 रु. हो सकती है जिस पर सरकार के कृषि विभाग द्वारा कृषक की श्रेणीनुसार 40–50 प्रतिशत तक अनुदान भी देय है।

बी.बी.एफ पद्धिति बुवाई : बी.बी.एफ. विधि द्वारा अधिक लाभ के लिए सोयाबीन की बुवाई जून के अंतिम सप्ताह से मानसून आने से जुलाई के मध्य तक की जानी चाहिए। जिन कृषकों के पास पानी की सुविधा हो तो वह जून माह में पलेवा करके जून के अंतिम सप्ताह में बुवाई कर सकते है। इससे बी.बी.एफ. क्यारिया व कूँड अच्छी तरह बन जायेगे तथा वर्षा आने पर फसल काफी अच्छी होगी। चूकि वर्षा के आने पर बुवाई हेतु कम समय मिलता है, अतः एक ट्रेक्टर से खेत को तैयार करते हुए दूसरे ट्रैक्टर से बी.बी.एफ. मशीन द्वारा बुवाई कर सकते है, ताकि बुवाई शीघ्र हो सकें।

फोटो साभार : इन्टरनेट एवं कृषि अनुसंधान केन्द्र

बी.बी.एफ पद्धिति के लाभ

- पानी की बचत (लगभग 25-30 %) एवं जल उपयोग दक्षता में वृद्धि
- गैर बरसात के दिनों के दौरान फसल में कम नमी तनाव
- सिंचाई में समय की बचत (25-30 %)
- कम बीज की आवश्यकता (लगभग 25.30% या 13–14 किग्रा/है0 कम बीज लगता है।
- बेहतर खरपतवार प्रबन्धन
- फसल सघनता पर्याप्त होती है तथा नालियों द्वारा पर्याप्त दूरी प्रदान होती है जिससे वायु एवं सूर्य के प्रकाश (धूप) पर्याप्त प्राप्त होती है, इस कारण कीट एवं व्याधियों का प्रकोप कम होता है।
- सोयाबीन फसल में पौध संरक्षण क्रियाओं जैसे स्प्रे में आसानी रहती है क्योकि चौडी क्यारियों के दोनों ओर नालियाँ होने से उनमें चलकर या ट्रेक्टर द्वारा बहुत ही आसानी से पौध संरक्षण दवाईयों का छिड़काव किया जा सकता है।
- बी.बी.एफ. प्रणाली का सर्वाधिक लाभ अत्यधिक वर्षा होने की स्थितियों में होता है। क बार बुवाई करते ही बारिस हो जाती है, ऐसे में चौडी क्यारियों से पानी नालियो में आ जाता है तथा फसल का पर्याप्त अकुंरण हो जाता है तथा पर्याप्त पौध संख्या रहती है। अनुसंधानों में पाया गया है कि 14–19 प्रतिशत पौधे कम नष्ट होते है। यदि फसल अवधि के दौरान भी यदि अत्यधिक वर्षा हो जाती है, तो भी नालियों द्वारा अतिरिक्त पानी का जल विकास करने में सुगमता रहती है।
- वैसे तो सोयाबीन खरीफ की वर्षा आधारित फसल है, यदि कभी वर्षा न होने की स्थिति में फसल में सिंचाई करनी पड़े तो नालियों द्वारा सिंचाई आसानी से की जा है। नालियों का उपयोग स्प्रिकलर पाइप व नोजल सेट लगाकर सिंचाई हेतु भी प्रयुक्त किया जा सकता है तथा आसानी से स्थापित किया जा सकता है।
- बी.बी.एफ. मशीन द्वारा गहरी नाली बनती है, जिससे अधिकतम वर्षा होने पर जल निकासी आसानी से की जा सकती है और कम वर्षा होने पर गहरी नाली नमी के संरक्षण का काम करती है तथा सिंचाई हेतु भी काम में ली जा सकती है, अतिरिक्त सिंचाई की पट्टियाँ नहीं बनानी पड़ती है। अतः इसीलिए बी.बी.एफ. पद्धिति को द्विउद्देशीय (ड्यूल परपज) तकनीक कहा जाता है, जो कि जलवायु अनुकूलन समुत्थनशील (क्लाइमेट रेजीलेन्ट) तकनीकी माना जाता है।
- उपरोक्त के अनुसार बी.बी.एफ. पद्धिति द्वारा मौसम की सामान्य तथा विषम परिस्थितियों में भी अधिक उत्पादन प्राप्त किया जा सकता है।
- बी. बी. एफ. पद्धिति में सूक्ष्म तत्व प्रबन्धन : सामान्य बोयी गई फसल की तरह ही बी.बी.एफ. पद्धिति से बोयी गई सोयाबीन फसल में भी सूक्ष्म तत्वों की कमी के लक्षण दिखाई दे सकते हैं। अच्छा तो यह रहता है कि बुवाई पूर्व मिट्टी की जाँच करा ले तथा उसके अनुसार बुवाई पूर्व या बुवाई के समय सूक्ष्मतत्वों विशेषतः जिंक सल्फेट (25 किग्रा/है.), बोरोन हेतु 10 किग्रा/है. बोरेक्स या गन्धक हेतु सल्फर 30 किग्रा/है. काम के लेवे। खडी फसल में सूक्ष्म तत्वों की कमी होने पर उनके लक्षणों के आधार पर सूक्ष्मतत्व उर्वरकों का प्रयोग करें। जैसे लोहे की कमी हेतु 0.5 प्रतिशत फेरस सल्फेट (हरा कसीस), जिंक की कमी हेतु जिंक सल्फेट 0.5 प्रतिशत घोल का छिडकाव करें।

बी. बी. एफ. पद्धिति में सिंचाई : चूंकि सोयाबीन की फसल वर्षा के मौसम में उगाई जाती है। अतः सिंचाई की कम ही आवश्यकता होती है परन्तु यदि फूल आने तथा फलियों में दाना बनते समय पानी की कमी बिल्कुल नहीं होने देना चाहिए। बी.बी.एफ. द्वारा बोई गई सोयाबीन फसल फ्लेट क्यारी विधि (सामान्य विधि) के वनस्पति ज्यादा दिनों तक नमी की कमी को सहन कर सकती है क्योंकि नालियों में उपलब्ध पानी या नमी, चौडी क्यारियों में के शाकीय (केपीलरी) क्रिया द्वारा पौधों की जड़ों को प्राप्त हो जाता है। फिर भी यदि अत्यधिक समय तक बारिस न हो, तो बी. बी.एफ. पद्धिति में निर्मित नालियों (फरो) में पानी देकर सिंचाई करनी चाहिए। बी.बी.एफ. विधि में चौडी क्यारी 90–120 सेमी, 20 सेमी ऊंची बेड तथा 45 सेमी चौडी फरो (नाली) जो 15–20 सेमी गहरी होती है और समोच्य ढाल (स्लोप) 0.5 प्रतिशत रखा जाता है।

बी.बी.एफ. प्रणाली में बारिश के पानी की आवाजाही दोनों दिशाओं में हो सकती है अर्थात चौडे रूप में नीचे की ओर और बाद में उठाए गए व्यापक (चौडी) क्यारी में भूमी में सूक्ष्म (माइक्रो) नलिकाओं या छिद्रों केपीलरी क्रिया द्वारा फसल की जडों तक नमी पहुँच जाती है जो कि वर्षा के पानी का कुशलतम उपयोग को बढाता है। चौडी मेड एवं कूँड पद्धति (बी.बी.एफ.) में आवश्यकतानुसार दो सिंचाई क्रमशः फूल आने एवं फलियों में दाना बनते समय करने पर कम वर्षा की स्थितियों में अच्छी उपज प्राप्त होती है। कुँड (फरो) लगभग 45 सेमी चौडी होती है, अतः इनमें स्प्रिकलर के पाइप बिछाकर फव्वारे लगाकर भी सिचाई की जा सकती है। मिनी स्प्रिंकलर से आई. डब्ल्यू/सी.पी.ई. अनुपात 1.0 होने पर सिंचाई करें यानि कि प्रत्येक 10–12 दिन के अन्तराल पर 7.5

घन्टे एक दिन में 2.5–2.5 घन्टे तक तीन बार प्रतिदिन तथा परम्परागत स्प्रिंकलर से 4.5 घन्टे अर्थात 1.5–1.5 घण्टे तक तीन बार प्रतिदिन सिंचाई करने से सोयाबीन की अच्छी उपज प्राप्त की जा सकती है।

बी.बी.एफ. पद्धिति में खरपतवार नियंत्रण : सोयाबीन फसल में खरपतवारों का प्रकोप अत्यधिक होता है जो पोषक तत्वों व पानी का ह्रास करतें है। अतः अधिक उपज प्राप्त करने हेतु समय पर खरपतवारों का नियंत्रण किया जाना चाहिए। यदि निराई गुडाई की आवश्यकता लगे तो केवल बीच की पंक्तियों में ही सावधानी पूर्वक निराई–गुडाई की जा सकती है। साइड की पंक्तियों के बाहर निराई–गुडाई नहीं करें अन्यथा बेड खराब होने से हानि हो सकती है। कूँड (नालियों) में निराई–गुडाई द्वारा खरपतवार नियंत्रित किये जा सकते है। परन्तु अच्छा तो यह होगा कि समय पर अनुसंशित खरपतवारनाशकों का प्रयोग कर खरपतावारों को नियंत्रित किया जावें।

बुवाई के बाद एवं अंकुरण होने से पहले : पेन्डीमेथालीन एक किलो सक्रिय तत्व प्रति हेक्टेयर या पेन्डीमिथेलीन 30 ई.सी. + इमेजिथापर 2 ई.सी. (मिश्रित उत्पाद) का 960 ग्राम सक्रिय तत्व प्रति हेक्टेयर (व्यवसायिक दर 3 ली. प्रति हेक्टेयर)।
अंकुरण पश्चात खड़ी फसल में चौड़ी पत्ती वाले खरपतवारों के नियन्त्रण हेतु क्लोरीम्यूरॉन थाइल 9.37 ग्राम प्रति हेक्टेयर सरफेक्टेन्ट (चिपकने वाला पदार्थ सहित) को बुवाई के 15 से 20 दिन के अन्दर या घासकुल वाले खरपतवारों के नियंत्रण हेतु क्विजालफोप–एथिल 5% ई. सी. 50 ग्राम प्रति हेक्टेयर या मिश्रित खरपतवारों हेतु क्विजालफोप–एथिल 5% ई.सी. 50 ग्राम प्रति हेक्टेयर + क्लोरिम्यूरान इथाईल 6 ग्राम सक्रिय तत्व का टंकी मिश्रण घोल सोयाबीन में 15–20 दिन की अवस्था पर या सोडियम एसीफ्लोरफेन 16.5 प्रतिशत + क्लोडिनाफॉप प्रोपारजिल 8 प्रतिशत, ई.सी. (मिश्रित उत्पाद) 1000 मिली प्रति हेक्टेयर की दर से बुवाई के 20–25 दिन बाद या फोमेसाफेन 11.1% + फ्लूजीफॉप–पी–ब्यूटाइल 11.1% एस.एल. (मिश्रित उत्पाद) का 220 ग्राम सक्रिय तत्व प्रति हेक्टेयर (व्यावसायिक दर 1.0 लीटर प्रति हेक्टेयर) की दर से बुवाई के 15–25 दिन बाद 500–600 लीटर पानी प्रयुक्त प्रति हेक्टेर छिड़काव करें।

बी.बी.एफ. पद्धिति में कीट एवं बीमारी नियंत्रण : सोयाबीन फसल में विभिन्न कीट एवं व्याधियों का प्रकोप होता है। परन्तु बी.बी.एफ. प्रणाली में कीट एवं व्याधियों का प्रकोप आंशिक रूप से कम पाया जाता है क्योंकि फसल में वायु व प्रकाश का अच्छा संचार होता है परन्तु यदि किसी कीट या बीमारी का प्रकोप दिखे तो अनुसंसित पौध संरक्षण रसायनों का प्रयोग कर कीट एवं बीमारियों का सामयिक नियंत्रण करें।

बी.बी.एफ. पद्धिति की सोयाबीन में अन्य समसामयिक (कन्टीनजेन्ट) क्रियाएं : फूल झड़ने की समस्या हो तो फूल आते समय ब्रासिनोस्टेराइड 0.25 ग्राम + साइटोकाइनिन 2.5 ग्राम का 500 लीटर पानी में घोल बनाकर प्रति हेक्टर 10–15 दिन के अंतराल पर दो बार छिडकाव करें।

सोयाबीन फसल में कीटों के नियन्त्रण हेतु अनुशंसित कीटनाशक

कीट	कीटनाशक	दर प्रति हेक्टेयर
फड़का	मैलाथियॉन 5% चूर्ण	25 किग्रा
तना मक्खी (स्टेम फ्लाई)	क्यूनालफॉस 25 ई.सी. थायोमिथोक्जॉम 12.6 प्रतिशत +लेम्डासायहेलोथ्रिन 9.5 प्रतिशत जेड सी	1.5 लीटर 125 मिली लीटर
रस चुसक कीट (सफेद मक्खी व तेला)	डायमिथोएट 30 ई.सी. मिथाइल डिमेटोन 25 ई.सी.	1.0 लीटर 1 लीटर
गर्डल बीटल	डायमिथोएट 30 ई.सी. थियाक्लोप्रिड 21.7 एस.सी.	1 लीटर 750 मिलीमीटर
रोयेदार इल्ली	क्यूनालफॉस 1.5% फ्लूबेंडियामाइड 39.35 एस.सी.	25 किग्रा 180 मिलीमीटर
पत्ती भक्षक लट्‌ (हरी अर्ध कुण्डलक (सेमीलूपर), तम्बाकू की इल्ली व चने की इल्ली)	स्पाइनेटोरम 12 एस.सी. बैसिलस थ्युरिंजिएंसिस (बीटी) क्यूनालफॉस 25 ई.सी. क्लोरोपायरिफॉस 20 ई.सी. लूफेन्यूरान 5 ई.सी. लेम्डासायहेलोथ्रिन 5 ई.सी. इमामेक्टिन बेन्जोएट 5 एस.जी. नोवाल्यूरॉन 10 एस.सी. इण्डोक्साकार्ब 15.8 ई..सी. क्लोरेंट्रानिलीप्रोल 18.5 एस.सी. प्रोफेनोफॉस 50 ई.सी. मेटाराइजियम एनिसोप्ली + बैसिलस थ्युरिंजिएंसिस (बीटी) यूवेरिया बेसियाना + बैसिलस थ्युरिंजिएंसिस (बीटी)	450 मिलीमीटर 1 लीटर/ किग्रा 1.5 लीटर 1.5 लीटर 500 मिलीमीटर 300 मिलीमीटर 180 ग्राम 500 मिलीमीटर 300 मिलीमीटर 100 मिलीमीटर 1.25 लीटर 2.0 कि.ग्रा.+1.0 कि.ग्रा. 2.0 कि.ग्रा.+1.0 कि.ग्रा.

सोयाबीन बीमारियां एवं उनका नियंत्रण :

बीमारियां	फफूंदनाशक	दर प्रति हेक्टेयर
जीवाणु रोग	कॉपर आक्सीक्लोराइड 50%	1.5 कि.ग्रा.
विषाणु रोग (पित्तशिरा विषाणु रोग)	डायमिथोएट / मैटासिस्टोक्स	500–600 मिलीलीटर
पत्ती धब्बा रोग	पिकोक्सिस्ट्रोबिन 7.05% + प्रोपिकोनाजोल 11.71% एस.सी.	1 लीटर
माइकोप्लाज्मा	डायमिथोएट मिथाइल डिमेटोन	500 मिलीलीटर 500 मिलीलीटर
तना गलन	मैन्कोजेब	1.5–2 कि.ग्रा.
फली झुलसा रोग	कार्बेन्डाजिम 50 डब्ल्यू.पी.	250 ग्राम

- खड़ी फसल में फली बनने की शुरुआत में डी.ए.पी. 2 प्रतिशत का पर्णीय छिडकाव करने पर उत्पादन में वृद्धि होती है।
- यदि फसल में पीलापन दिखाई दे तो 0.1 प्रतिशत गन्धक के तेजाब या 0.5 % फेरस सल्फेट हरा कसीस का छिडकाव करें।
- प्रकाश पाश का उपयोग (एक प्रति पाँच हैक्टर) करें इसके लिए खेत की मेडों पर एवं खेत में गैस लालटेन या बिजली के बल्ब जलाये तथा उसके नीचे केरोसीन मिले पानी (5%) के घोल का परात रखे ताकि रोशनी में आकर्षित कीठ पतंगें घोल में गिर कर नष्ट हो जाए। यह प्रक्रिया मानसून की वर्षा प्रारम्भ होते ही सितम्बर तक जारी रखे।
- फेरोमेन ट्रेप का प्रयोग (एक प्रति हेक्टर) कीटों की निगरानी के लिए एवं 5 प्रति हेक्टर कीट नियंत्रण हेतु प्रयुक्त करें।
- कीट भक्षी पक्षियों के आश्रय के लिए टी (T) आकार की 30–40 खपच्चियां प्रति हैक्टर के हिसाब से बांस या अन्य लकड़ी टी (T) आकार की खपच्चियों को सम्पूर्ण खेत में लगाये।
- **जल घुलनशील उर्वरक नत्रजन :** फास्फोरसः पोटाश (19:19:19 या 17:44:00) की 5 ग्राम प्रति लीटर के दो पर्णीय छिडकाव क्रमशः बुवाई के 45 व 60 दिन पश्चात् करने से पौधों की अच्छी वृद्धि द्वारा अधिक उपज ली जा सकती है।

अतः सोयाबीन की फसल की पैदावार में लाभ और फसल स्थापना और वृद्धि के लिए बेहतर मृदपा वातावरण के साथ–साथ भूमि की तैयारी पर कम लागत से सोयाबीन की फसल को सोयाबीन उत्पादकों द्वारा अधिक शुद्ध के लिए कुशल विकसित मशीन का उपयोग करके बीबीएफ प्रणाली पर लगाया जाना चाहिए। यदि सोयाबीन की बुवाई, चौडी मेड एवं कूँड (बी. बी. एफ.) पद्धति से की जाए तो बदलते जलवायु परिवेश यानि अत्यधिक वर्षा या कम वर्षा दोनों परिस्थितियों में भी आवश्यकतानुसार अन्य सिफारिशें व उन्नत तकनीकियों के प्रयोग के साथ, सोयाबीन की अच्छी उपज प्राप्त की जा सकती है।

***

खरीफ फसल प्रबंधन में मिट्टी और जल संरक्षण की भूमिका

पूनम फौजदार, खजान सिंह एवं पी. के. पी. मीना

कृषि अनुसंधान, कोटा एवं कृषि विश्वविद्यालय, कोटा

भारत में कृषि मुख्य रूप से मानसून पर आधारित है, और खरीफ का मौसम (जून से अक्टूबर तक) वर्षा–आधारित फसलों के उत्पादन के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण है। खरीफ फसलों जैसे धान, मक्का, सोयाबीन, मूंगफली आदि की अच्छी पैदावार के लिए मिट्टी की गुणवत्ता और जल की उपलब्धता बनाए रखना आवश्यक है। पृथ्वी के प्राकृतिक संसाधनों के बेईमानी से दोहन ने स्थिरता के लिए खतरा पैदा कर दिया है। मृदा सर्वेक्षण और मृदा संरक्षण विभाग की प्राथमिक चिंता यह सुनिश्चित करना है कि हमारे घटते प्राकृतिक संसाधनों को आज संरक्षित किया जाए और भावी पीढ़ियों के लिए संरक्षित किया जाए। मानव अस्तित्व इस हस्तक्षेप की मांग करता है। कृषि के लिए पानी सबसे महत्वपूर्ण घटक है। हमारे 60 % खेत वर्षा पर निर्भर हैं।

मृदा सर्वेक्षण गतिविधियों के हिस्से के रूप में किए गए संसाधन सूचीकरण से प्राकृतिक संसाधनों की स्थिति, उनकी सीमाओं और सुधारात्मक उपायों पर प्रकाश पड़ता है। अब विभिन्न मृदा और जल संरक्षण कार्यक्रमों की अवधारणा के माध्यम से मिट्टी, पानी और बायोमास की मूल्यवान संसाधन त्रिमूर्ति के प्रबंधन पर जोर दिया जा रहा है। यह सतही और भूजल संसाधनों को बढ़ाने के लिए वर्षा जल के संरक्षण और संचयन को भी बढ़ावा देता है। मिट्टी और जल संरक्षण न केवल फसल उत्पादन को बढ़ाता है, बल्कि दीर्घकालिक कृषि स्थिरता को भी सुनिश्चित करता है।

मिट्टी संरक्षण का महत्व

खरीफ के मौसम में भारी वर्षा के कारण मिट्टी का कटाव एक सामान्य समस्या है। यदि समय रहते मिट्टी का संरक्षण न किया जाए, तो उपजाऊ परत बह जाती है, जिससे भूमि की उत्पादकता में कमी आती है।

मुख्य कारण :

- पानी के तेज बहाव से मिट्टी का कटाव
- पोषक तत्वों की क्षति
- भूमि की ऊपज क्षमता में गिरावट

मिट्टी संरक्षण के उपाय

समोच्च जुताई : समोच्च जुताई या समोच्च खेती, ढलान के पार उसकी ऊंचाई समोच्च रेखाओं का अनुसरण करते हुए जुताई और/या रोपण की कृषि पद्धति है। ये समोच्च रेखा फरो पानी का एक ब्रेक बनाते हैं, जिससे भारी वर्षा के दौरान रिल्स और नालियों का निर्माण कम होता है और पानी को मिट्टी में बसने के लिए अधिक समय मिलता है। समोच्च जुताई में, हल द्वारा बनाए गए गड्ढे ढलानों के समानांतर होने के बजाय लंबवत चलते हैं, आम तौर पर ऐसे फ़रो होते हैं जो जमीन के चारों ओर घुमावदार होते हैं और समतल होते हैं। यह विधि जुताई के कटाव को रोकने के लिए भी जानी जाती है। जुताई का कटाव मिट्टी की गति और भूमि के दिए गए भूखंड की जुताई से होने वाला कटाव है। इसी तरह का एक अभ्यास समोच्च बंडिंग है जहां ढलानों के समोच्च के चारों ओर पत्थर रखे जाते हैं।

इस तरह की मृदा अपरदन रोकथाम प्रथाओं से मृदा अपरदन से जुड़े नकारात्मक प्रभावों में भारी कमी आ सकती है, जैसे फसल उत्पादकता में कमी, पानी की गुणवत्ता में गिरावट, जलाशयों में प्रभावी जल स्तर में कमी, बाढ़ और आवास विनाश। कंटूर खेती को टिकाऊ कृषि का एक सक्रिय रूप माना जाता है।

फसल चक्रण : फसल चक्रण एक ऐसी प्रक्रिया है जिसमें एक ही क्षेत्र में विभिन्न मौसमों में विभिन्न प्रकार की फसलें उगाई जाती हैं। इस प्रक्रिया से फसलों की एक ही पोषक तत्व पर निर्भरता कम हो जाती है, कीटोंऔर खरपतवारों का दबाव कम हो जाता है, साथ ही प्रतिरोधी कीटों और खरपतवारों के विकसित होने की संभावना भी कम हो जाती है।

एक ही जगह पर कई सालों तक एक ही फसल उगाना, जिसे मोनोक्रश्वपिंग के नाम से जाना जाता है, धीरे–धीरे मिट्टी से कुछ पोषक तत्वों को खत्म कर देता है और उस फसल प्रणाली के अनुकूल विशेष कीट और खरपतवार आबादी के प्रसार को बढ़ावा देता है। पोषक तत्वों के उपयोग को संतुलित किए बिना और कीट और खरपतवार समुदायों में विविधता लाए बिना, मोनोकल्चर की उत्पादकता बाहरी इनपुट पर अत्यधिक निर्भर होती है जो मिट्टी की उर्वरता के लिए हानिकारक हो सकती है। इसके विपरीत, एक अच्छी तरह से डिजाइन किया गया फसल चक्र, फसलों के विविध सेट से पारिस्थितिकी तंत्र सेवाओं का बेहतर उपयोग करके सिंथेटिक उर्वरकों और शाकनाशियों की आवश्यकता को कम कर सकता है। इसके अतिरिक्त, फसल चक्र मिट्टी की संरचना और कार्बनिक पदार्थों में सुधार कर सकते हैं, जो कटाव को कम करता है और कृषि प्रणाली के लचीलेपन को बढ़ाता है।

हरा आवरण : कृषि में, कवर फसलें ऐसे पौधे होते हैं जिन्हें कटाई के उद्देश्य से नहीं बल्कि मिट्टी को ढकने के लिए लगाया जाता है। कवर फसलें मिट्टी के कटाव, मिट्टी की उर्वरता, मिट्टी की गुणवत्ता, पानी, खरपतवार, कीट, रोग, जैव विविधता और वन्य जीवन को एक कृषि तंत्र में प्रबंधित करती हैं। यह एक पारिस्थितिक तंत्र जो मनुष्यों द्वारा प्रबंधित और आकार दिया जाता है। कवर फसलें मिट्टी में सूक्ष्मजीव गतिविधि को बढ़ा सकती हैं, जिसका नाइट्रोजन की उपलब्धता, लक्षित फसलों में नाइट्रोजन के अवशोषण और फसल की पैदावार पर सकारात्मक प्रभाव पड़ता है। कवर फसलें जल प्रदूषण के जोखिम को कम करती हैं और वातावरण से CO_2 को हटाती हैं। कवर फसलें नकदी फसल की कटाई के बाद लगाई जाने वाली ऑफ–सीजन फसल हो सकती हैं।

बंडिंग और टेरेसिंग : ढलानों पर बंध बनाकर पानी की गति को नियंत्रित करना। बंडिंग, जिसे बंड दीवार भी कहा जाता है, भंडारण के चारों ओर निर्मित एक रिटेनिंग दीवार हैए जहाँ संभावित प्रदूषणकारी पदार्थों को संभाला, संसाधित या संग्रहीत किया जाता है, जिसका उद्देश्य उस क्षेत्र से सामग्री के किसी भी अनपेक्षित रिसाव को रोकना है जब तक कि कोई उपचारात्मक कार्रवाई नहीं की जा सकती। कृषि में सीढ़ीनुमा जमीन एक समतल सतह होती है जिसे पहाड़ियों या पहाड़ों में काटकर फसलों की खेती के लिए क्षेत्र प्रदान किया जाता है, यह खेती को और अधिक प्रभावी बनाने का एक तरीका है। सीढ़ीनुमा कृषि या खेती तब होती है जब ये प्लेटफार्म जमीन के नीचे क्रमिक रूप से एक पैटर्न में बनाए जाते हैं जो सीढ़ियों की सीढ़ियों जैसा दिखता है। भूनिर्माण के एक प्रकार के रूप में, इसे सीढ़ीनुमा कहा जाता है।

सीढ़ीदार खेत कटाव और सतही अपवाह दोनों को कम करते हैं, और इनका उपयोग सिंचाई की आवश्यकता वाली फसलों को उगाने में किया जा सकता है, जैसे कि चावल। इस तकनीक के महत्व के कारण फिलीपीन कॉर्डिलेरा के चावल की छतों को यूनेस्को की विश्व धरोहर स्थल के रूप में नामित किया गया है।

जल संरक्षण का महत्व

खरीफ की खेती में अधिकतर फसलें पानी पर निर्भर करती हैं। वर्षा जल का सही प्रबंधन न होने पर या तो जलभराव होता है या सूखे की स्थिति उत्पन्न होती है। इसलिए जल संरक्षण खरीफ फसलों के लिए अत्यंत आवश्यक है।

जल संरक्षण के उपाय

वर्षा जल संचयन : छोटे–छोटे तालाब, कुंड या गड्ढों में वर्षा जल एकत्र करना। वर्षा के जल को किसी मानव–निर्मित आवाह–क्षेत्र में एकत्र करने और उसे संचय करने की प्रक्रिया को वर्षा जल संचयन कहा जाता है। घर की छत पर, आहाते में, पहाड़ी की ढाल पर, या कृत्रिम भूमि पर बने कृत्रिम तलों आदि में जल संचयन किया जा सकता है। अर्द्ध शुष्क क्षेत्रों के लिये जल संचयन बहुत उपयोगी है क्योंकि वहाँ वर्ष भर सिंचाई के लिये जल उपलब्ध नहीं होता। जल–संचयन का मुख्य लाभ ये है कि यह एक सरल, सस्ती, दक्ष, पर्यावरण–मित्र, और टिकाऊ पद्धति है।

विश्व भर में पेयजल की कमी एक संकट बनती जा रही है। इसका कारण पृथ्वी के जलस्तर का लगातार नीचे जाना भी है। इसके लिये अधिशेष मानसून अपवाह जो बहकर सागर में मिल जाता है, उसका संचयन और पुनर्भरण किया जाना आवश्यक है, ताकि भूजल संसाधनों का संवर्धन हो पाये। अकेले भारत में ही व्यवहार्य भूजल भण्डारण का आकलन 214 बिलियन घन मी. (बीसीएम) के रूप में किया गया है जिसमें से 160 बीसीएम की पुनः प्राप्ति हो सकती है। इस समस्या का एक समाधान जल संचयन है। पशुओं के पीने के पानी की उपलब्धता, फसलों की सिंचाई के विकल्प के रूप में जल संचयन प्रणाली को विश्वव्यापी तौर पर अपनाया जा रहा है। जल संचयन प्रणाली उन स्थानों के लिए उचित है, जहां प्रतिवर्ष न्यूनतम 200 मिमी वर्षा होती हो। इस प्रणाली का खर्च 400 वर्ग इकाई में नया घर बनाते समय लगभग बारह से पंद्रह सौ रुपए मात्र तक आता है।

सूक्ष्म सिंचाई प्रणालियाँ : सूक्ष्म सिंचाई, जिसे कभी–कभी स्थानीयकृत सिंचाई , कम मात्रा सिंचाई या ट्रिकल सिंचाई कहा जाता है, यह एक ऐसी प्रणाली है जिसमें पानी को कम दबाव में पाइप नेटवर्क के माध्यम से, पूर्व–निर्धारित पैटर्न में वितरित किया जाता है, और प्रत्येक पौधे या उसके आस–पास के छोटे डिस्चार्ज के रूप में लगाया जाता है। पारंपरिक ड्रिप सिंचाई में व्यक्तिगत एमिटर, सबसर्फ़ेस ड्रिप सिंचाई (एसडीआई), माइक्रो–स्प्रे या माइक्रो–स्प्रिंकलर और मिनी–बबलर सिंचाई का उपयोग किया जाता है, ये सभी सिंचाई विधियों की इस श्रेणी में आते हैं।

मल्चिंग : एक पतली प्लास्टिक की फिल्म को जमीन के ऊपर रखा जाता है, बीजों को लगाने के लिए नियमित अंतराल पर छिद्रों को छिद्रित किया जाता है, या विकास के शुरुआती चरणों में इसे सीधे पौधों पर रखा जाता

है। फिल्मों की खेती की अवधि (आमतौर पर 2–4 महीने) तक होती है और आमतौर पर इसकी मोटाई 12-80µm होती है। प्लास्टिक मल्च के मुख्य कार्य मिट्टी के नमी के वाष्पीकरण को रोकना, बीजों की कटाई को कम करना, खरपतवार की वृद्धि को रोकना और कटाव को रोकना है। रंगहीन फिल्मों का उपयोग किया जा सकता है, जिनमें से प्रत्येक विशिष्ट फायदे और दूसरे पर नुकसान हैं। काली फिल्में खरपतवार की वृद्धि को रोकती हैं, लेकिन मिट्टी को गर्म करने के लिए प्रकाश का संचार नहीं करती हैं। स्पष्ट फिल्में प्रकाश को संचारित करती हैं और मिट्टी को गर्म करती हैं, लेकिन खरपतवार के विकास को बढ़ावा देती हैं। पलवार में फसलों के बेकार, पुआल, भूंसी, सूखी पत्तियों का प्रयोग खाली स्थानों को ढ़कनें में किया जाता है जो खाली जगह पर आवरण बनाकर मृदा अपरदन एवं पोषक तत्व क्षरण को नियंत्रित करती है। पहाड़ी क्षेत्रों में फलों के बागों में आवरण फसल एंव पलवार का विशेष महत्व है। जैविक तरीकों के साथ–साथ मल्चिंग प्लास्टिक का अधिक उपयोग किया जा रहा है। सब्जियों एवं फल इत्यादि का उत्पादन में बढ़ोतरी देखी जा रही है। भूमि के किसी क्षेत्र पर बिछायी जाने वाली सामग्री को पलवार या मल्च कहते हैं।

लाभ :

- मृदा मे नमी संरक्षण एवं तापमान नियंत्रण मे सहायक।
- हवा एवं पानी से मिट्टी के कटाव कम करना।
- पोधो के वृद्धी के लिए अनुकूल वातावरण प्रदान करना।
- उत्पादकता मे सुधार।
- भूमि की उर्वरा व स्वास्थ्य की वृद्धि।
- खरपतवारों की वृद्धि को रोकना।
- क्षेत्र के दृष्य–सौन्दर्य को बढ़ाना जरूरी नहीं है कि पलवार कोई जैविक चीज ही हो। पलवार स्थायी हो सकती है (जैसे बार्क चिप) या अस्थायी (जैसे प्लास्टिक की पतली चादरें)।

सिंचाई का उचित समय : प्रातः या सायं के समय सिंचाई करने से जल वाष्पीकरण की हानि कम होती है। सिंचाई का सही समय फसल के विकास चरण, जलवायु और मिट्टी के प्रकार पर निर्भर करता है। सामान्यतः, सिंचाई बुआई के बाद 20–25 दिन, फिर 40–45 दिन, और तने में गांठ पड़ने पर 65–70 दिन बाद करनी चाहिए। फूल आने पर बुआई के 90–95 दिन बाद भी सिंचाई आवश्यक होती है।

खरीफ फसल प्रबंधन में एकीकृत दृष्टिकोण

केवल मिट्टी और जल संरक्षण उपायों को अपनाने से ही नहीं, बल्कि उन्नत बीज, समुचित उर्वरक प्रबंधन, और कीट नियंत्रण के साथ एक समग्र दृष्टिकोण अपनाना भी आवश्यक है। इससे खरीफ फसलों की पैदावार में उल्लेखनीय वृद्धि हो सकती है। खरीफ फसल प्रबंधन में मिट्टी और जल संरक्षण की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण है क्योंकि इस मौसम में अधिक वर्षा के कारण मृदा क्षरण, जल अपवाह और पोषक तत्वों की हानि की संभावना अधिक होती है। उचित संरक्षण उपाय जैसे कंटूर खेती, मेड़बंदी, मल्चिंग, जल संचयन और हरी खाद न केवल मिट्टी की गुणवत्ता बनाए रखते हैं बल्कि जल के कुशल उपयोग में भी सहायक होते हैं।

इन विधियों से भूमि की उत्पादकता दीर्घकालिक रूप से बनी रहती है, जल संकट को कम किया जा सकता है और फसलों की उपज में स्थिरता लाई जा सकती है। इसलिए, मिट्टी और जल संरक्षण को खरीफ फसल प्रबंधन का अभिन्न हिस्सा बनाना आवश्यक है ताकि स्थायी षि और खाद्य सुरक्षा सुनिश्चित की जा सके।

निष्कर्ष

खरीफ फसल प्रबंधन में मिट्टी और जल संरक्षण की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण है। उचित तकनीकों और जागरूक प्रयासों के माध्यम से न केवल वर्तमान उत्पादन को बढ़ाया जा सकता है, बल्कि भविष्य के लिए भी प्राकृतिक संसाधनों का संरक्षण किया जा सकता है। किसानों, वैज्ञानिकों और सरकार को मिलकर इस दिशा में ठोस कदम उठाने की आवश्यकता है, ताकि कृषि क्षेत्र को टिकाऊ और समृद्ध बनाया जा सके।

खरीफ प्याज की उन्नत खेती

गुलाब चौधरी, सुरेश चन्द कांटवा, विक्रमजीत सिंह एवं अशोक चौधरी
कृषि विज्ञान केन्द्र, हनुमानगढ़-II (नोहर), राजस्थान पशुचिकित्सा और पशु विज्ञान विश्वविद्यालय, बीकानेर

भारत वर्ष में प्याज की खेती तीन मौसमों यथा खरीफ, पछेती खरीफ और रबी में की जाती है। लगभग 13.21% उत्पादन खरीफ प्याज से होता है। खरीफ प्याज की रोपाई जुलाई से अगस्त के दौरान की जाती है और अक्टूबर से नवंबर के दौरान इसकी कटाई की जाती है। रबी सीजन की प्याज की फसल का बड़ा हिस्सा पूरे भारत में संग्रहीत किया जाता है। यह संग्रहीत प्याज मई से अक्टूबर के दौरान उपलब्ध होता है, लेकिन देश में अक्टूबर से दिसंबर के दौरान प्याज की आपूर्ति में गंभीर होता है। इसलिए खरीफ प्याज की फसल देश में उपभोक्ताओं की मांग को पूरा करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है अतः खरीफ प्याज की खेती को लोकप्रिय बनाने की आवश्यकता है जो प्याज की कीमतों को नियंत्रित करने में भी मदद करेगी। पोषण की दृष्टि से यह कम केलौरी युक्त (40 केलौरी प्रति 100 ग्राम) तथा अधिक विटामिन 'सी' युक्त भोज्य पदार्थ है। राजस्थान में प्याज की खेती मुख्यतः रबी मौसम में की जाती है। अजमेर, जयपुर, सीकर, झुन्झुनू, नागौर, जोधपुर, चित्तौड़गढ़ और अलवर जिलों में इसकी खेती खरीफ मौसम में की जाती है, परन्तु अन्य जिलों में भी पिछले कुछ सालों से खरीफ प्याज की खेती किसानों के बीच लोकप्रिय होती जा रही है।

जलवायु : राजस्थान की जलवायु व भूमि प्याज उत्पादन के लिए काफी अनुकूल है। पौधों की प्रारंभिक वृद्धि के लिए ठंडी जलवायु की आवश्यकता होती है, लेकिन अच्छे और बड़े कन्द के निर्माण के लिए पर्याप्त धूप वाले बड़े दिन उपयुक्त रहते हैं। कंद निर्माण के पूर्व खरीफ प्याज की फसल के लिए लगभग 21 डिग्री सेंटीग्रेट तापक्रम उपयुक्त माना जाता है।

खेत का चुनाव एवं तैयारी : प्याज की खेती किसी भी जीवांशयुक्त मिट्टी में की जा सकती है, परन्तु इसकी अधिक पैदावार लेने के लिए हल्की दोमट या चिकनी बलुई मिट्टी सर्वोत्तम मानी गयी है। अधिक क्षारीय या अम्लीय मिट्टी प्याज उत्पादन के लिए उपयुक्त नहीं है। खेत में 2–3 बार कल्टीवेटर चलायें व फसल के बचे भाग, खरपतवार आदि इकट्ठा कर कम्पोस्ट के गड्ढे में डाल देवें खेत में 20–25 टन अच्छी तरह से सड़ी हुई गोबर की खाद डालकर उसे हैरों द्वारा मिट्टी में अच्छी तरह से मिला देना चाहिए। खेत में अन्तिम जुताई से पहले खेत में सिफारिश की गई उर्वरकों की मात्रा को समान रूप से बिखेर देना चाहिए फिर जुताई करके खेत में पाटा अवश्य लगायें। इसके पश्चात् जमीन के ढाल के अनुसार 4–6 मीटर की दूरी पर लम्बवत् मेड़ बनाकर 2.4 वर्ग मीटर या 2.6 वर्ग मीटर आकार की क्यारियाँ बनानी चाहिए।

खरीफ फसल हेतु उन्नत किस्में : अर्का कल्याण, एग्रीफाउन्ड डार्क रेड, एन. 53, भीमा रेड, भीमा डार्क रेड, भीमा श्वेता, भीमा सफेद, भीमा शुभ्रा (सफेद प्याज), भीमा सुपर (लाल प्याज), भीमा राज, बसवंत 780, अर्का कल्यान, पूसा रिद्धि और अर्का निकेतन।

प्याज को उगाने के विभिन्न तरीके : प्याज को तीन प्रकार से उगाया जा सकता है :–

1. नर्सरी में बीज की बुवाई कर मुख्य खेत में रोपाई करें।
2. हरे प्याज के उत्पादन के लिए छोटी–छोटी कंदिकाएं को उगाना।
3. सीधी बुवाई।

1. नर्सरी में बीज की बुवाई कर मुख्य खेत में रोपाई : पौधशाला सिंचाई के स्त्रोत के समीप होनी चाहिए ऐसी जमीन जहाँ पर मोथा या दूब या कोई अन्य बहुवर्षीय खरपतवार न हो, उसमें नर्सरी डालनी चाहिए। भूमि की तैयारी करते समय इसमें अच्छी प्रकार से सड़ी गोबर की खाद डाले व खाद डालने के उपरान्त उगे हुए खरपतवार को निकालकर बीज की बुवाई करनी चाहिए। पौधशाला में बीज की बुवाई उठी हुई क्यारियों (एक मीटर चौड़ी, 2–4 मीटर लम्बी तथा 15 से.मी. ऊंची) में करनी चाहिए । उठी क्यारियों में पौध मोटी तथा जल्दी तैयार होती है तथा रोपाई के लिए पौधे उखाड़ने में आसानी होती है। खरीफ प्याज पौध तैयार करने के लिए बीजों को नर्सरी की क्यारियों में मई के अन्तिम सप्ताह से लेकर जून के मध्य तक बोयें खरीफ प्याज की पौध तैयार करने के लिए 10–12 कि.ग्रा. बीज प्रति हैक्टेयर की आवश्यकता होती है क्योंकि खरीफ के मौसम में भूमिगत रोग का प्रकोप अधिक रहता है अतः बीज (2–3 ग्राम दवा प्रति कि.ग्रा. बीज) तथा पौधशाला की मिट्टी को (4–5 ग्राम दवा प्रति वर्ग मीटर) कवकनाशी जैसे थाइरम या कैप्टान आदि से अवश्य उपचारित करें। खरीफ प्याज के लिए प्याज की पौध रोपाई का उपयुक्त समय जुलाई के अन्तिम सप्ताह से अगस्त तक है।

2. हरे प्याज के उत्पादन के लिए छोटी–छोटी कंदिकाएं उगाना : हरी एवं गुच्छी प्याज को उगाने के लिए इस विधि का उपयोग किया जाता है। इसके रोपण के लिए पिछले सीजन में उगाई गई खरीफ प्याज की किस्मों की छोटी छोटी प्याज की कंद को लें। अब मिट्टी के प्रकार के आधार पर ऊँची क्यारियाँ या समतल क्यारियाँ तैयार करें। 1 वर्ग मीटर क्यारी के लिए 15 ग्राम बीज की आवश्यकता होती हैं, यानी कुल नर्सरी क्षेत्र के लिए 3 किलोग्राम बीज की आवश्यकता होती है। गुणवत्तायुक्त बल्ब प्राप्त करने के लिए उन्हें मध्य जनवरी–फरवरी के बीच में बोयें। पौधों को अप्रैल से मई तक नर्सरी बेड में छोड़ दें जब तक कि उनका ऊपरी हिस्सा गिर न जाए। शीर्षों और चयनित बल्बों की कटाई करें और भंडारित करें।

3. सीधी बुवाई : सीधी बुवाई के लिए 8–10 किलोग्राम प्रति एकड़ बीजों की आवश्यकता होती है। बड़े प्याज लेने के लिए बीजों को पंक्ति–पंक्ति के बीच 30 सेमी की दूरी और पौधों–पौधों के बीच 30 सेमी की दूरी पर बोएं। बाद में, बल्ब के विकास के लिए उचित दूरी देने के लिए थिनिंग की जा सकती है। छोटे प्याज लेने के लिए, बीजों की छोटी समतल क्यारियों में बुवाई करें। बीजों को 2.5–3 सेमी की गहराई पर लगाएं और बुवाई के 10 दिनों बाद हाथों से निराइ–गुड़ाई करके हल्की सिंचाई करें। सीधी बुवाई करने का उपयुक्त समय सितंबर से अक्टूबर माह है।

खरीफ प्याज के लिए जिंक की कमी वाले क्षेत्रों में रोपाई से पूर्व जिंक सल्फेट 25 किलोग्राम प्रति हेक्टेयर भूमि में मिलावे अथवा जिंक की कमी के लक्षण दिखाई देने पर 5 किलोग्राम जिंक सल्फेट का छिडकाव पौध रोपाई के बाद 60 दिन बाद करें।

सिंचाई : प्याज की जड़ें मिट्टी में 10–15 से.मी. की गहराई तक फैलती है और किसी भी अवस्था में 20 से. मी. से गहरी नहीं जाती है। इसलिए प्याज की फसल की सिंचाई करते समय 15 सेमी. से अधिक गहराई तक पानी देने की आवश्यकता नहीं होती है। पौधों में गांठ बनना आरम्भ होने से कन्दों के पूर्ण विकास तक (रोपाई के 60–100 दिन तक) नियमित रूप से सिंचाई की आवश्यकता होती है। इस अवधि में पानी की कमी होने से उत्पादन पर विपरीत प्रभाव पड़ता है।

खरपतवार प्रबंधन : चूंकि प्याज के पौधे बहुत कम दूरी पर होते हैं और जड़ें उथली होती हैं, इसलिए फसल को खरपतवार मुक्त रखना बहुत जरूरी है, खासकर रोपाई से 30–45 दिन तक। रोपाई से लगभग 45 दिन तक फसल में खरपतवारों की प्रतिस्पर्धा अधिक होती है, इससे उपज

खाद एवं उर्वरक : अच्छी पैदावार लेने के लिए खेत की तैयारी से पूर्व मिट्टी का परीक्षण अवश्य करायें व उसके हिसाब से ही खेत में सिफारिश की गयी उर्वरकों एवं सूक्ष्म पोषक तत्वों की मात्रा का प्रयोग करे–

खाद एवं पोषक तत्व	मात्रा प्रति हैक्टेयर	खाद एवं पोषक तत्वों को देने का समय एवं विधि
गोबर	25–30 टन	पौध रोपाई के 30 दिन पूर्व अन्तिम जुताई के समय खेत में समान रूप से बिखेर कर खेत की मिट्टी में मिलायें।
नत्रजन फॉस्सफोरस पोटाश	50 कि. ग्राम 50 कि.ग्राम 100 कि. ग्राम	पौध रोपाई के 30 दिन पूर्व अन्तिम जुताई के समय खेत में समान रूप से बिखेर कर खेत की मिट्टी में मिलायें।
जिप्सम	400 कि. ग्राम	15 दिन पूर्व खेत में जुताई के साथ डालें।
नत्रजन	50 कि. ग्राम	पौध की रोपाई के 30 दिन व 45 दिन बाद खेत में आधी–आधी मात्रा बिखेरकर तुरन्त सिंचाई करें।

में 60% तक की कमी आ सकती है। रोपाई से पहले या रोपाई के 8–10 दिन बाद फ्लैट नोजल स्प्रेयर का उपयोग करके खरपतवारनाशक ऑक्सीफ्लोरोफेन 23.5% EC @ 1.0 मिली/लीटर पानी का छिड़काव करने और रोपाई के 30 दिन बाद एक बार हाथ से निराई करने से प्याज में खरपतवारों का प्रभावी नियंत्रण होता है। रोपाई के 25 दिन बाद क्विजालोफोप एथिल 5% EC @ 1 मिली/लीटर पानी का छिड़काव करने और उसके बाद 45 DAT पर एक बार हाथ से निराई करने से भी अच्छे परिणाम मिल सकते हैं।

प्याज की फसल में विकार

अरड़ा (बोल्टिंग) : प्याज की फसल मे 50–80 प्रतिशत तक अरड़ा हो जाने की सम्भावना रहती है। कुछ वैज्ञानिकों का मानना है कि विशेष परिस्थितियों में प्याज फसल अपनी सामान्य बढ़वार को छोड़ देती है व अचानक उनमें डंठल निकलकर फूल आने लगते हैं जिनमें अधकच्चे बीज बनने लगते हैं व पौधे अपना सामान्य व्यवहार बदल देते हैं यानि पौधों में कन्दों को सामान्य बढ़वार रूक जाती है तथा छोटे एवं नलीदार कन्द बन जाते हैं जिनके भण्डारण की क्षमता बहुत कम होती है। खरीफ सीजन में, देर से कटाई करने से बल्ब दोगुने हो जाते हैं और बोल्टिंग होती है।

प्याज कन्द में फटन एवं जुड़वां कन्द बनना : पोषक तत्वों की असामान्य मात्रा (सही समय पर उचित पोषक तत्त्वों का उपयोग न करना) से प्याज कन्दों में फटन एवं जुडवां कन्द बन जाते हैं जिसके कारण कन्द की गुणवत्ता एवं विक्रय मूल्य में सार्थक कमी आ जाती है कभी–कभी निराई–गुड़ाई करते वक्त कन्दों में खुरपी से चोट लग जाती है जिससे इन कन्दों की नई वृद्धि शुरू हो जाती है तथा कन्द में फटन व जुड़वा कन्द बनने लग जाते हैं। प्याज की खुदाई करने के उपरांत इसे अच्छी प्रकार से सुखा लेना चाहिए तथा भण्डारण कम नमी व हवादार कमरे में करना चाहिए ।

खरीफ प्याज की फसल में रोग नियंत्रण

1. आर्द्रगलन (डैम्पिंग आफ) : यह बीमारी आमतौर पर नर्सरी और पौधे की प्रारम्भिक अवस्था में नुकसान पहुँचाती है व मुख्य रूप से पीथियम, फ्यूजेरियम तथा राइजोक्टोनिया कवकों द्वारा होती है। इस बीमारी का प्रकोप खरीफ प्याज में ज्यादा होता है। इस रोग में पौध के जमीन की सतह पर लगे हुए स्थान पर सड़न दिखाई देती है और आगे पौध उसी सतह से गिरकर मर जाती है।

नियंत्रण के उपाय

- बुवाई के लिए स्वस्थ बीज का चुनाव करना चाहिए।
- बुवाई से पूर्व बीज को थाइरम या कैप्टान 2.5 ग्राम प्रति किग्रा बीज की दर से उपचारित कर लें।
- पौध शैय्या के ऊपरी भाग की मृदा में थाइरम के घोल (2.5 ग्राम प्रति लीटर पानी) या बाविस्टीन के घोल (1.0 ग्राम प्रति लीटर पानी) से 15 दिन के अन्तराल पर छिड़काव करना चाहिए।
- जड़ और जमीन पर ट्राइकोडर्मा विरडी के घोल (5.0 ग्राम प्रति लीटर पानी) का 15 दिन के अन्तराल पर छिड़काव करना चाहिए।

2. बैंगनी धब्बा रोग (परपल ब्लाच) : यह बीमारी आल्टरनेरिया पोरी नामक कवक (फफूंद) द्वारा होती है। यह रोग प्याज की पत्तियों, तनों तथा बीज डंठलों पर लगता है। रोग ग्रस्त भाग पर सफेद भूरे रंग के धब्बे बनते हैं जिनका मध्य भाग बाद में बैंगनी रंग का हो जाता है। रोग के लक्षण के लगभग दो सप्ताह पश्चात इन बैंगनी धब्बों पर पृष्ठीय बीजाणुओं के बनने से ये काले रंग के दिखाई देते हैं।

नियंत्रण के उपाय

- खरीफ प्याज की खेती के लिए 2 से 3 साल का फसल–चक्र अपनाना चाहिए।
- पौध की रोपाई के 45 दिन बाद 0.25 प्रतिशत डाइथेन एम– 45 या ब्लाइटाक्स–50 का चिपकने वाली दवा मिलाकर छिड़काव करना चाहिए।

3. झुलसा रोग (स्टेमफीलियम ब्लाइट)

यह रोग स्टेमफीलियम बेसिकेरियम नामक कवक द्वारा फैलता है। प्रारम्भ में यह रोग पत्तियों और बीज के डंठलों पर छोटे–छोटे सफेद और हलके पीले धब्बों के रूप में पाया जाता है। बाद में यह धब्बे एक–दूसरे से मिलकर बड़े भूरे रंग के धब्बों में बदल जाते हैं और अन्त में ये गहरे भूरे या काले रंग के हो जाते हैं। पत्तियां धीरे–धीरे सिरे की तरफ से सूखना शुरू करती हैं और आधार की तरफ बढ़कर पूरी सूख कर जल जाती हैं और कन्दों का विकास नहीं हो पाता।

नियंत्रण के उपाय

- खरीफ प्याज की खेती के लिए लम्बा फसल–चक्र अपनाना चाहिए।
- पौध की रोपाई के 45 दिनों के बाद 0.25 प्रतिशत मैनकोजेब (डाइथेन एम– 45) या सिक्सर (डाइथेन एम– 45 + कार्बेन्डाजिम) अथवा 0.2–0.3 प्रतिशत कॉपर आक्सीक्लोराइड (ब्लाइटाक्स–50) का छिड़काव प्रत्येक 15 दिन के अन्तराल पर 3–4 बार करना चाहिए।

4. मदुरोमिल आसिता (डाउनी मिल्डयू) : यह बीमारी पेरेनोस्पोरा डिस्ट्रक्टर नामक फफूंद के कारण होती है। इसके लक्षण सुबह जब पत्तियों पर ओस हो तो आसानी से देखे जा सकते है। पत्तियों तथा बीज डंठलों की सतह पर बैंगनी रोयेंदार वृद्धि इस रोग की पहचान है। रोग की सर्वागी दशाओं में पौधा बौना हो जाता है। रोगी पौधे से प्राप्त कन्द आकार में छोटे होते हैं तथा इनकी भंडारण अवधि कम हो जाती है।

नियंत्रण के उपाय

- खरीफ प्याज पौध को लगाने से पहले खेतों की अच्छी तरह से जुताई करना चाहिए जिससे उसमें उपस्थित रोगाणु नष्ट हो जाये।
- बीमारी का प्रकोप होने पर 0.25 प्रतिशत मैनकोजेब का घोल बनाकर 15 दिन के अन्तराल पर दो से तीन बार छिड़काव करने चाहिए।

खरीफ प्याज की फसल में कीट नियंत्रण

1. चूसक कीट (थ्रिप्स टेबेसाई) : ये आकार में छोटे व 1–2 मिमी लम्बे कोमल कीट होते हैं। ये कीट सफेद–भूरे या हल्के पीले रंग के होते हैं। इस कीट के निम्फ और प्रौढ़ दोनों ही अवस्थायें मुलायम पत्तियों का रस चूस कर, उन्हें क्षति पहुँचाती हैं। इस कीट से प्रभावित पत्तियों में जगह जगह पर सफेद धब्बे दिखाई देते हैं। इनका अधिक प्रकोप होने पर पत्तियां सिकुड़ जाती है और पौधों की बढ़वार रुक जाती है तथा प्रभावित पौधों के कंद छोटे रह जाते हैं, जिससे उपज में कमी हो जाती है।

नियंत्रण के उपाय

- इन कीटों का संक्रमण दिखाई देने पर नीम द्वारा निर्मित कीटनाशी (जैसे ईकोनीम, निरिन या ग्रेनीम) 3–5 मिली प्रति लीटर पानी की दर से आवश्यकतानुसार घोल तैयार कर शाम के समय फसल पर 10–12 दिनों के अंतराल पर 2–3 छिडकाव करें।या
- डाईमेथोएट 30 ईसी 650 मिली प्रति 600 लिटर पानी के साथ या मेटासिस्टॉक्स 25 ईसी 1 लीटर 600 लीटर पानी के साथ या इमिडाक्लोप्रिड 8 एसएल 30 ईसी 5 मिली प्रति 15 लीटर पानी के साथ छिड़काव करें।

2. प्याज की मक्खी या मैगट (हाईलिमिया एंटीकुआ)

यह मक्खी खरीफ प्याज की फसल का प्रमुख हानिकारक कीट है, जो अपने मैगट पौधों के भूमि के पास वाले भाग, आधारीय तने में देती हैं। मैगटों की संख्या 2–4 तक हो सकती है। इनसे भूमि के पास वाले तने का भाग सड़कर नष्ट हो जाने से पूरा पौधा सूख जाता है। कभी–कभी इस कीट द्वारा फसल को भारी मात्रा मे क्षति होती है।

नियंत्रण के उपाय

- खरीफ प्याज की रोपाई से पूर्व, खेत की तैयारी करते समय नीम खली की खाद 3–4 क्विंटल प्रति एकड़ की दर से जुताई कर भूमि मे मिलाएं।
- खेत की तैयारी करते समय कीटनाशी क्लोरोपाईरिफॉस 5 प्रतिशत या मिथाईल पैराथियान 2 प्रतिशत की दर से जुताई करते समय भूमि मे मिलाएं तत्पश्चात फसल की रोपाई करें।
- खड़ी फसल में इस कीट (मैगट) का संक्रमण दिखाई देने पर कीटनाशी क्वनालफॉस 2 मिली प्रति लीटर पानी की दर से आवश्यकतानुसार मात्रा में घोल तैयार कर शाम के समय 2–3 छिड़काव करें।

3. कटुवा सुंडी (कटवर्म) : यह एक रात्रि चर कीट है, जो मटमैले भूरे रंग का होता है। यह प्याज के पौधों को जमीन की सतह से काट देता है, जिससे पौधे गिर जाते हैं और सूखकर मर जाते हैं।

नियंत्रण के उपाय

- गर्मी में खेत की गहरी जुताई करनी चाहिए ।
- पौध रोपण से पहले खेत में कार्बोफ्यूरॉन 3जी 1 किलोग्राम सक्रिय तत्व प्रति हैक्टेयर के हिसाब से मिला दें।
- पौध रोपण के पश्चात इस कीट का प्रकोप होने पर क्लोरोपायरीफॉस 20 ई सी दवा 2 मिलीलीटर प्रति लीटर पानी में मिलाकर शाम के समय छिड़काव करें।

4. शीर्ष बेधक कीट (हेलिकोवर्पा की सुंडी) : इस कीट की सुंडी क्षतिकारक होती है। जिसकी पीठ पर तीन धारियां पाई जाती हैं जो प्याज बीज उत्पादन के लिए लगाई जाती है, उसमें यह ज्यादा नुकसान पहुँचाती है। यह पुष्पन की अवस्था में आक्रमण करता है जिससे बीज नहीं बन पाता है।

नियंत्रण के उपाय

- गर्मी में खेत की गहरी जुताई करनी चाहिए।
- नर सुंडी को आकर्षित करने वाले फेरोमोन ट्रेप का प्रयोग करना चाहिए।
- एच एन पी वी की 300 एल ई (सुंडी समतुल्य) मात्रा में 1 किलोग्राम देशी गुड़ व 0.01 प्रतिशत इंडोट्रान 100 एक्स (चिपकने वाला पदार्थ) को 800 लीटर पानी में मिलाकर 2 से 3 बार छिड़काव करना चाहिए ।
- कीट का प्रकोप होने पर क्लोरोपायरीफॉस 2 मिलीलीटर दवा प्रति 1 लीटर पानी में मिलाकर आवश्यकतानुसार छिड़काव करना चाहिए।

कटाई : खरीफ सीजन में, चूंकि शीर्ष नहीं गिरते, इसलिए पत्तियों का रंग बदलकर हल्का पीला होने और शीर्ष सूखने और बल्बों पर लाल रंग विकसित होने के तुरंत बाद बल्बों की कटाई की जाती है। विकसित सही आकार के बल्बों की कटाई की जाती है और शीर्ष को सूखने के लिए रखा जाता है। पूरी तरह सूखने के बाद बल्ब के ऊपर लगभग 2–2.5 सेमी शीर्ष छोड़कर पत्तियों को काट दिया जाता है।

उपज : अनुकूल परिस्थितियों में खरीफ प्याज किस्मों से प्याज की औसत उत्पादकता 150–200 क्वि प्रति हैक्टेयर प्राप्त हो जाती है।

खुदाई पश्चात नुकसान कम करना : लगभग 40–50 प्रतिशत नुकसान भंडारण के दौरान होता है। उचित तकनीक का इस्तेमाल कर इस नुकसान को कम किया जा सकता है। कंदों को खुदाई के बाद तीन दिनों के लिए खेत में सूखने के लिए छोड़ देना चाहिए, जिससे कंद शुष्क हो जाते हैं और उनकी जीवनावधि बढ़ जाती है। तीन दिनों के बाद 2.0–2.5 सें.मी. ग्रीवा को छोड़कर सबसे ऊपर का भाग हटाकर 10–12 दिन के लिए कंदों को छाया में रखना चाहिए ताकि बेहतर भंडारण हो सके। प्याज के कंदों को भंडारण से पहले वर्गीकृत किया जाना चाहिए। खरीफ और पछेती खरीफ प्याज की अपेक्षा रबी प्याज में बेहतर भंडारण क्षमता होती है। सतह एवं बाजू से हवादार दो पंक्ति वाला भंडारगृह या कम लागत वाला सतह और बाजू से हवादार एकल पंक्ति भंडारगृह में प्याज का भंडारण करने की सिफारिश की गई है। अच्छे भंडारण के लिए भंडारगृहों का तापमान 30–350 सेल्सियस तथा सापेक्ष आर्द्रता 65–70 प्रतिशत होनी चाहिए।

***

धान की सीधी बुवाई : समय व लागत की बचत

शालिनी मीणा, उदिती धाकड़, आर. के. मीणा एवं के. एम. शर्मा
शस्यविज्ञान विभाग, कृषि महाविद्यालय, उम्मेदगंज, कोटा

राजस्थान, एक ऐसा राज्य जहाँ पानी की कमी एक गंभीर चुनौती है, वहाँ धान की खेती पारंपरिक रूप से एक जल–गहन फसल मानी जाती है। पारंपरिक रोपाई विधि में खेत में लगातार पानी भरे रखने की आवश्यकता होती है, जिससे भूजल स्तर में गिरावट आती है और किसानों की लागत भी बढ़ती है। ऐसे में, धान की सीधी बिजाई (डायरेक्ट सीडेड राइस) एक नई तकनिकी के रूप में उभरी है, जो पानी, श्रम और समय की बचत करते हुए भी अच्छी पैदावार देने की क्षमता रखती है। किसानों को कम संसाधनों में अधिक उत्पादन प्राप्त करने की आवश्यकता है।

सीधी बिजाई धान क्या है : सीधी बिजाई धान (डायरेक्ट सिडेड राइस) धान उगाने की एक ऐसी विधि है जिसमें धान के बीजों को सीधे खेत ट्रैक्टर चालित सीड ड्रील की सहायता से बोया जाता है, न कि नर्सरी में पौधे तैयार करके उनकी रोपाई की जाती है। यह विधि पारंपरिक रोपाई विधि की तुलना में क मायनों में से लाभकारी है।

सीधी बिजाई धान के लाभ

1. जल संरक्षण : यह डी.एस.आर का सबसे महत्वपूर्ण पहलु है। पारंपरिक विधि में धान की नर्सरी तैयार करने और खेत की पडलिंग में भारी मात्रा में पानी बर्बाद होता है। डी.एस.आर में इन प्रक्रियाओं की आवश्यकता नहीं होती, जिससे लगभग 25-30% तक पानी की बचत होती है। लेव करने में कुल जल खपत का लगभग 20% हिस्सा लगता है, जो डी.एस.आर में पूरी तरह से बच जाता है।

2. श्रम की बचत : कृषि में श्रम की कमी और बढ़ती मजदूरी एक गंभीर समस्या है। डी.एस.आर, इस चुनौती का समाधान करती है, पारंपरिक विधि में नर्सरी तैयार करने और धान के पौधों की रोपा के लिए बड़ी संख्या में श्रमिकों की आवश्यकता होती है। इसमें बीज सीधे खेत में बोए जाते हैं, जिससे प्रति हेक्टेयर 25–30 श्रमिकों की बचत होती है। समय पर बुवाईश्रम की उपलब्धता पर निर्भरता कम होने से किसान सही समय पर बुवाई कर सकते हैं।

3. समय की बचत : डी.एस.आर फसल आमतौर पर पारंपरिक रोपाई वाली फसल की तुलना में 7–10 दिन जल्दी पककर तैयार हो जाती है। यह किसानों को अगली रबी फसल की बुवाई के लिए पर्याप्त समय प्रदान करती है, जिससे दोहरी फसल चक्र को आसानी से अपनाया जा सकता है। राजस्थान में मानसून की अनिश्चितता को देखते हुए, डी.एस.आर के माध्यम से किसान मानसून के आगमन से पहले ही बुवाई कर सकते हैं, जिससे वे बारिश पर पूरी तरह निर्भर नहीं रहते और फसल का समय पर विकास सुनिश्चित होता है।

4. लागत में कमी : पानी, श्रम और मशीनरी के कुशल उपयोग से कुल उत्पादन लागत में उल्लेखनीय कमी आती है जल की बचत सीधे तौर पर सिंचाई लागत (बिजली या डीजल) को कम करती है। श्रम की बचत से मजदूरों को दी जाने वाली मजदूरी पर होने वाला खर्च कम होता है। लेव और अन्य जुताई प्रक्रियाओं में कम मशीनरी उपयोग के कारण 35–40 लीटर डीजल प्रति हेक्टेयर तक की बचत का अनुमान है।

5. पर्यावरणीय लाभ : डी.एस.आर. विधि मिट्टी के पारिस्थितिकी तंत्र पर सकारात्मक प्रभाव डालती है, ट्रांसप्लांटिंग विधि में खेत में लगातार पानी भरे रहने से मिट्टी की संरचना (पडलिंग इफेक्ट) खराब होती है और उसकी जल धारण क्षमता घटती है। इसें विधि में भूमि को प्रायः नम रखा जाता है, जिससे उसकी प्राकृतिक संरचना बनी रहती है और मिट्टी में वायु संचार बेहतर होता है। पारंपरिक जलभराव वाली धान की खेती से मीथेन (एक शक्तिशाली ग्रीनहाउस गैस) का उत्सर्जन होता है। डी.एस.आर में मीथेन का उत्सर्जन 35ः तक कम हो जाता है, जिससे यह पर्यावरण के लिए अधिक अनुकूल है।

6. यांत्रिकरण : डी.एस.आर में बीज सीधे सीड ड्रिल या जीरो टिलेज मशीन से बोए जाते हैं, जिससे कृषि कार्यों में यांत्रिकरण को बढ़ावा मिलता है। यह बड़े पैमाने पर खेती करने वाले किसानों के लिए विशेष रूप से फायदेमंद है। यांत्रिकरण से सटीकता बढ़ती है, जैसे बीज की समान गहराई और दूरी, जिससे फसल का बेहतर जमाव और विकास सुनिश्चित होता है।

7. पोषक तत्व उपयोग दक्षता में सुधार : मिट्टी की बेहतर वातन और संरचना से पौधों द्वारा पोषक तत्वों का अवशोषण बेहतर होता है। मिट्टी में पोषक तत्वों का लीलचग (पानी के साथ बह जाना) कम होता है क्योंकि खेत में लगातार पानी नहल भरा रहता।

भूमि का चयन एवं खेत की तैयारी : धान की खेती के लिए ऐसी दोमट या चिकनी मिट्टी वाली भूमि का चयन करना चाहिए, जिसकी पानी रोकने की क्षमता अच्छी हो। साथ ही, यह भी सुनिश्चित करें कि खेत में सिंचाई की सुविधा उपलब्ध हो, ताकि आवश्यकता पड़ने पर समय पर सिंचाई की जा सके। इस विधि में धान के लिए खेत की तैयारी नम एवं शुष्क अवस्था में की जाती है। गर्मियों में खेत की गहरी जुताई करना आवश्यक होता है। खेत तैयार करने के लिए पहले क्यारियाँ बनाकर पलेवा दें। पलेवा के बाद जब खेत में नमी आ जाए, तो दो से तीन बार ट्रैक्टर चालित कल्टीवेटर और हैरो की सहायता से जुताई करें।

धान की उपयुक्त किस्मों का चयन : डायरेक्ट सिडेड राइस विधि के लिए जल्दी पकने वाली किस्मों का उपयोग किया जाता है, जो सामान्यतः 120 से 125 दिन में पककर तैयार हो जाती हैं। उपयुक्त किस्मों में विशेष रूप से कोटा संभाग के लिए निम्नलिखित किस्म उपयुक्त पाई गई है।

पूसा सुगंधा–4 : यह एक बासमती धान की किस्म है, जिसकी ऊँचाई लगभग 115–120 से.मी. तथा मध्यम कद वाली है। इसकी औसत उपज 40–45 क्विंटल प्रति हेक्टेयर तक होती है। पौधा आड़ी नहीं गिरता और इसकी फसल 125–130 दिन में पक जाती है। यह किस्म ब्लास्ट रोग, तना छेदक और जीवाणु अंगमारी के प्रति मध्यम प्रतिरोधी है। इस किस्म के दाने लंबे, पतले, स्वादिष्ट और सुगंधित होते हैं।

पूसा सुगंधा 5 : यह मध्यम ऊँचाई वाली (110.115 सेमी) बासमती गुणों से युक्त धान की अधिक उपज देने वाली किस्म है, जिसकी औसतन उपज 40.50 क्विंटल प्रति हेक्टेयर तक होती है। यह किस्म 120 125 दिनों में पककर तैयार हो जाती है। इसका चावल लंबा, सुगंधित और स्वादिष्ट होता है।

पूसा बासमती 1718 : यह किस्म 135–140 दिन में पककर औसतन 45.50 किवंटल प्रति हेक्टेयर उपज देती है। पौधे मध्यम ऊंचाई (115–120 सेमी.) एवं इसका दाना लम्बा, पतला खुशबूदार होता है। यह किस्म जीवाणु अंगमारी, ब्लास्ट एवं पर्णधार झुलसा रोग तथा धान का भूरा फुदका कीट के प्रति मध्यम प्रतिरोधी है।

इम्प्रूव्ड पूसा बासमती 1 : यह बासमती धान की अर्द्ध बौनी (100–110 से.मी. ऊंचाई) एवं यह किस्म 130–138 दिन में पककर औसतन उपज 40–45 किवटल प्रति हेक्टेयर देती है।

बीज एवं बीज उपचार : पंक्तिबद्ध सीधी बुवाई के लिए 30 किलोग्राम बीज प्रति हेक्टेयर पर्याप्त होता है। बीजों को बोने से पूर्व 2% नमक के घोल में डालकर अच्छी तरह हिलाना चाहिए। जो बीज पानी में तैरें, उन्हें निकाल दें और जो नीचे बैठ जाएं उन्हें साफ पानी से धोकर छाया में सुखाएं। रोगों से बचाव के लिए बीजों को 1 ग्राम कार्बेन्डाजिम प्रति किलोग्राम बीज की दर से उपचारित करें, जिससे ब्लास्ट और भूरा धब्बा जैसे रोगों से सुरक्षा मिल सके।

बुवाई का समय एवं विधि : धान की सीधी बुवा जून के अंतिम सप्ताह से जुलाई के पहले सप्ताह तक पूरी कर लेनी चाहिए। बुवाई 20 सेमी कतार से कतार की दूरी पर करें। यह कार्य ट्रैक्टर चालित सीड ड्रील से किया जाता है।

उर्वरक प्रबंधन : राइस की सीधी बुवाई में 120 किग्रा नत्रजन, 60 किग्रा, फॉस्फोरस एवं 10 किग्रा पोटाश की आवश्यकता होती हैं। सम्पूर्ण फॉस्फोरस एवं पोटाश तथा नत्रजन की आधी मात्रा आखिरी जुताई करते समय देनी चाहिए। इसके बाद नत्रजन को आधी मात्रा को दो भागों ये विभाजित करके पहले भाग का 25–30 दिन पर एवं दूसरे भाग को कल्ले निकलने के बाद तथा बालियाँ निकलने से पूर्व देवे। जिंक की कमी वाले क्षेत्रों ये 25 किलोग्राम हेप्टाहाइड्रेट जिंक सल्फेट (21%) या 15 किलोग्राम मोनोहाइड्रेट लजक सल्फेट (31%) हेक्टेयर अन्तिम जुताई के समय खेत में मिलाये।

सिंचाई एवं जल प्रबंधन : डायरेक्ट सीडेड राइस तकनीक में खेत में लगातार पानी भरकर रखने की आवश्यकता नहीं होती। इसमें केवल आवश्यकता अनुसार सिंचाई की जाती है। यदि बारिश न हो तो सप्ताह में एक बार सिंचाई करनी चाहिए। खेत में पूरा पानी भरने के बजाय केवल आवश्यक नमी बनाए रखना उचित होता है। सूखी मिट्टी में धान की बुआई करने के तुरंत बाद हल्की सिंचाई करनी चाहिए। बुवाई के बाद पौधों की तीन पत्तियों की अवस्था तक मिट्टी को गीला रखने से अंकुरण बेहतर होता है और जड़ों का विकास अच्छी तरह होता है। यदि बुवाई के तुरंत बाद बारिश हो जाती है तो अतिरिक्त सिंचाई की आवश्यकता नहीं होती। सामान्यतः सीधी बुआई से धान की फसल को लगभग 1000 मिमी पानी की आवश्यकता होती है। यदि वर्षा नहीं हो रही हो, तो लगभग 7 दिन के अंतराल पर 10 से 12 बार सिंचाई करनी पड़ती है।

खरपतवार नियंत्रण : सीधी बुआई विधि में खरपतवार धान की उपज को प्रभावित करने वाले प्रमुख कारकों में से एक हैं। चूंकि इस तकनीक में बीजों की बुवाई सीधी लाइनों में होती है, इसलिए खरपतवार नियंत्रण हर्बीसाइड (खरपतवारनाशी) और यंत्रों के माध्यम से सरलता से किया जा सकता है। यदि खरपतवारों पर नियंत्रण न किया जाए, तो वे उपज में 50-60% तक की कमी कर सकते हैं।

खरपतवार नियंत्रण की विधियाँ : हाथ से खरपतवार निकालनाः यह सरल और प्रभावी तरीका है। यदि खरपतवारों को फूल आने से पहले ही उखाड़ दिया जाए और खेत से बाहर कर दिया जाए, तो न केवल श्रम लागत कम होती है बल्कि अगले वर्ष के लिए भी खरपतवारों की समस्या कम हो जाती है। धान की बुवाई के लगभग 20–25 दिन बाद पहला और 40–45 दिन बाद दूसरा खरपतवार नियंत्रण करना अत्यंत आवश्यक होता है। इस समयावधि में किए गए नियंत्रण से फसल पर सकारात्मक प्रभाव पड़ता है।

रासायनिक विधि द्वारा खरपतवार नियंत्रण : धान की सीधी बुवाई में खरपतवार नियंत्रण के लिए विभिन्न खरपतवारनाशकों का उपयोग प्रभावी माना जाता है। प्रति हेक्टेयर क्षेत्र में छिड़काव के लिए 500 से 600 लीटर पानी पर्याप्त होता है। इस कार्य में सामान्यतः नेपसेक स्प्रेयर और फूट स्प्रेयर जैसे यंत्रों का उपयोग किया जाता है। बुवाई के 2–3 दिन बाद पेन्डीमेथालीन (1.0 किग्रा सक्रिय तत्व/हेक्टेयर) का छिड़काव करने से प्रारंभिक खरपतवारों पर नियंत्रण पाया जा सकता है। इसके बाद, बुवाई के 20–25 दिन पर बिस्पायरीबेक–सोडियम (35 ग्राम/हेक्टेयर) का छिड़काव करने से घास कुल व चौड़ी पत्ती वाले खरपतवारों का प्रभावी नियंत्रण होता है।

कीट एवं रोग नियंत्रण : धान की फसल में कई प्रकार के कीट हानि पहुँचाते हैंः तना छेदक, पत्ती का फुदका, तने का फुदका, पत्ती मोड़क, और गंधीबग। इन सब कीटो की रोकथाम के लिए मोनोक्रोटोफॉस 36 एस.एल या एसीफेट 75 एस.पी. 500 ग्राम या डाइमिथोएट 30 ई.सी. 500 मिलीलीटर को 600 लीटर पानी में घोल कर छिड़काव करें। साथ ही, धान की फसल में विभिन्न प्रकार के रोगों का प्रकोप भी देखने को मिलता है, जैसे झुलसा (जीवाणु अंगमारी) और पत्ती धब्बा आदि। इनकी सही पहचान कर पत्ती धब्बा रोग के नियंत्रण लिए 1–1.25 किलो मैंकोजेब या 500 मिली कीटाजन का घोल बनाकर छिड़काव करें।

कटाई एवं भंडारण : डी.एस.आर विधि से बोई गई धान की फसल आमतौर पर 120–125 दिन में पक कर तैयार हो जाती है। जब धान के दानों में 15-16% नमी रह जाए, तब कटाई करनी चाहिए। इसके बाद, 10-12% नमी पर अनाज को भंडारण के लिए सुरक्षित किया जा सकता है। इस विधि से प्रति हेक्टेयर 40–50 क्विंटल तक उत्पादन संभव है। समय पर कटाई होने से रबी की फसल (जैसे चना या अलसी) की समय पर बुवाई हो सकती है। खेत में उचित नमी होने के कारण जीरो टिलेज तकनीक से रबी फसलों की बेहतर उपज ली जा सकती है।

***

प्रमुख खरीफ फसलों की जैविक विधि द्वारा उन्नत खेती

भेरू लाल कुम्हार, राहुल भारद्वाज, राकेश चौधरी एवं रेखा कुमावत

बी. आर. चौधरी कृषि अनुसंधान केन्द्र, मण्डोर, कृषि विश्वविद्यालय जोधपुर

तिल: स्थानीय रूप से उपलब्ध जैविक व प्राकृतिक संसाधनों जैसे पशु अपशिष्ट, फसल अवशेष, वर्षा जल इत्यादि के सदुपयोग व रासायनिक उर्वरक, कीटनाशक, खरपतवार नाशक आदि का प्रयोग न करके, प्रकृति मित्र तकनीकों से फसल का पोषण व रक्षण प्रबंधन करने को जैविक खेती कहते है। इसमें जैविक खाद, जैव कीट नियंत्रक, फसल चक, मल्चिंग आदि का प्रयोग किया जाता है। जैविक खेती में भूमि की उर्वरकता को जैव विधियों जैसे जैविक खाद, फसल चक, आदि से निरंतर बनाये रखने के तरीके अपनाये जाते है साथ ही नीम आदि कीटनाशक गुणों वाले पौधो के उत्पादो व मित्र कीट, सूक्ष्मजीवों का प्रयोग कर रोग–कीटों का नियंत्रण किया जाता है।

खाद एवं उर्वरक: अच्छी उपज प्राप्त करने के लिये कम से कम 5 टन गोबर की खाद या कम्पोस्ट खाद बुवाई से 15–20 दिन पहले खेत में अच्छी प्रकार मिला देना चाहिये तथा प्रति वर्ष एक बार अवश्य प्रयोग करनी चाहिये। तिल की फसल में दीमक पौधों की जड़ों को खाकर नुकसान पहुँचाती है। दीमक के नियंत्रण हेतु अंतिम जुताई के समय खेत में 400 किलो नीम खली प्रति हैक्टेयर की दर से भूमि में बुवाई से पूर्व मिला देनी चाहिये।

बीज एवं बुवाई: तिल की अच्छी उपज के लिए स्वस्थ, रोग–कीट रहित बीज का चयन कर 6–8 मिली ट्राइकोडर्मा तरल से प्रति किलो बीज को उपचारित कर बुवाई करनी चाहिये। एक हैक्टेयर क्षेत्र के लिये 2–3 किलोग्राम बीज पर्याप्त होता है। फसल की बुवाई जुलाई के प्रथम सप्ताह में कर देनी चाहिये। बुवाई पंक्तियों में करनी चाहिये। पंक्ति से पंक्ति की दूरी 60 से.मी. तथा पौधे से पौधे की दूरी 20 से 25 से.मी. रखनी चाहिये। बीज की बुवाई 2–3 से.मी. से अधिक गहरी नहीं करनी चाहिये। अधिक गहराई पर बुवाई करने से फसल का अंकुरण प्रभावित होता है।

फसल चक्र : तिल की फसल शुद्ध एवं मिश्रित खेती के रूप में उगाई जाती है। वर्षा आधारित खेती में खरीफ ऋतु में तिल के पश्चात मूंग, मोठ या ग्वार उगानी चाहिये। एक ही फसल को एक खेत में लगातार नहीं उगानी चाहिये।

निराई गुडाई : तिल के पौधों की प्रारम्भिक अवस्था में बढ़वार धीमी गति से होती है। जिसके कारण खरपतवार फसल को अधिक हानि पहुँचाते है। खरपतवार नियंत्रण के लिये पकी हुई जैविक खाद व साफ बीज का प्रयोग करना चाहिये। खेत में उगे खरपतवारों को हाथ से उखाड़कर फसल की पंक्तियों के बीच मल्च के रूप में बिछा देना चाहिये। फसल जब 20 दिन एवं 40 दिन की हो जाय तो कस्सी से गुड़ाई कर देनी चाहिये।

रोग एवं कीट नियंत्रण

1 रोग–कीट नियंत्रण के लिये निम्न उपायों का समन्वित प्रयोग करना चाहिये।
2 स्वस्थ, रोग–कीट रहित बीज का चयन कर 6–8 मिली ट्राइकोडर्मा तरल से प्रति किलो बीज को उपचारित कर बुवाई करनी चाहिये।
3 अच्छी पकी हुई जैविक खाद का प्रयोग 5 टन प्रति हैक्टेयर की दर से भूमि तैयारी के समय करना चाहिये।
4 खेत की बाड़ व बीच में पंक्तियों में कई प्रकार के फूलदार वृक्ष–झाड़ी लगाने चाहिये जिससे फसल के लिये लाभकारी कीटों को आश्रय व भोजन मिलता रहे। खेत की बाड़ पर कुछ वृक्ष नीम के भी लगाने चाहिये ताकि जैविक कीट नियंत्रण बनाने हेतु निम्बोली मिल सके।
5 नीम आधारित जैविक कीट नियंत्रक घोल का छिड़काव सांयकाल ही करना चाहिए।
6 जैविक तिल में पत्ती व फली छेदक की रोकथाम हेतु जैविक कीटनाशक साथ आक का काढा 75 लीटर प्रति हेक्टयर की दर से 500 लीटर पानी में घोलकर बुवाई के 50, 60 तथा 70 वें दिन छिड़काव करें।

फायलोडी : इस बीमारी का प्रकोप पुष्प अवस्था में होता है। इसके प्रकोप से फूल अंग हरी पत्ती जैसी आकृति में परिवर्तित हो जाते हैं तथा पौधें की वानस्पतिक वृद्धि अधिक हो जाती हैं। इस बीमारी से प्रभावित पौधों में केप्सूल बहुत कम बनते हैं। रोगी पौधे को खेत से उखाड़ कर नष्ट कर देना चाहिये या गड्ढे में गाड़ देना चाहिये। इसकी रोकथाम के लिए नीम तेल (300 पी.पी.एम.) का 15 मि.ली. प्रति/लीटर पानी की दर से मिला कर छिड़काव करना चाहिये।

जड़ एवं तना गलन : रोगी पौधे की जड़ एवं तना भूरे रंग के हो जाते हैं तथा तने, शाखाओं, पत्तियों व फलियों पर छोटे–छोटे काले दाने दिखाई देते हैं। इस रोग के प्रकोप से पौधे जल्दी पक जाते हैं। इसकी रोकथाम हेतु प्रमाणित एवं उपचारित बीज की बुवाई करनी चाहिये। बीज को बुवाई से पहले 6–8 मिली ट्राइकोडर्मा तरल से प्रति किलो बीज की दर से उपचारित कर बुवाई करनी चाहिये।

पर्णकुचंन : इस बीमारी के कारण पौधे की पत्तियां गहरी हरी छोटी हो जाती हैं तथा नीचे की तरफ मुड़ जाती हैं। इसके कारण पौधे छोटे रह जाते है तथा फलियां बनने से पहले ही सूख जाते हैं। यह रोग सफेद मक्खी द्वारा फैलता है। रोगी पौधे को खेत से उखाड़ कर नष्ट कर देना चाहिये या गड्ढे में गाड़ देना चाहिये। इसकी रोकथाम के लिए नीम तेल (300 पी.पी. एम.) का 15 मि.ली. प्रति 1 लीटर पानी की दर से मिला कर छिड़काव करना चाहिये।

बीज उत्पादन : तिल का उत्पादन करने के लिए ऐसी भूमि का चुनाव करना चाहिये जिसमें तिल की फसल पिछले वर्ष न ली गई हो तथा भूमि समतल एवं उपजाऊ हो। उसमें दूसरी किस्म के पौधे, खरपतवार, कीडे एवं बीमारियों का प्रकोप नहीं होना चाहिये। फसल की मंडाई के पश्चात बीज को अच्छी प्रकार सुखा कर स्वस्थ बीज को उपचारित कर लोहे की टंकी में भरकर अच्छी प्रकार बन्द करना चाहिये। इस बीज को किसान बुवाई के काम में ले सकते हैं।

कटाई एवं उपज : पौधों की पत्तियाँ एवं फलियाँ पीले पड़ जायें तथा पत्तियाँ गिर जाये तो फसल की कटाई कर लेनी चाहिये। फसल को 5–7 दिनों तक सुखाने के पश्चात पौधों से बीज को थ्रेसर द्वारा या डंडे द्वारा अलग कर लेना चाहिये। तिल की जैविक खेती द्वारा करने पर 800–960 किग्रा. उपज प्रति हैक्टेयर प्राप्त हो जाती है।

मूंग

बीज एवं बुवाई : बुवाई के समय का फसल की उपज पर बहुत प्रभाव पड़ता है। मूग की बुवाई 15 जुलाई तक कर देनी चाहिये। देरी से वर्षा होने पर शीघ्र पकने वाली किस्मों की बुवाई 30 जुलाई तक की जा सकती है। बीज स्वस्थ एवं अच्छी गुणवत्ता वाला होना चाहिये तथा उपचारित बीज बुवाई के काम लेना चाहिये। इसके अतिरिक्त बीज 600 ग्राम राइजोबियम कल्चर को एक लीटर पानी में 250 ग्राम गुड़ के साथ

गर्म कर ठंडा होने पर उपचारित कर छाया में सुखा लेना चाहिये तथा बुवाई कर देनी चाहिये। बुवाई कतारों में करनी चाहिये। अच्छी उपज के लिये स्वस्थ, रोग–कीट रहित बीज का चयनकर 6–8 मिली ट्राइकोडर्मा तरल से प्रति किलो बीज को उपचारित कर बुवाई करनी चाहिये। कतारों के बीच की दूरी 60 से.मी. तथा पौधे से पौधे की दूरी 30 सेन्टीमीटर उचित होती है।

खाद एवं उर्वरक : दलहनी फसल होने के कारण मूंग को कम नाइट्रोजन की आवश्यकता होती है। अच्छी उपज प्राप्त करने के लिए कम से कम 5 टन गोबर की खाद या कम्पोस्ट खाद बुवाई से 15–20 दिन पहले खेत में अच्छी प्रकार मिला देना चाहिये तथा प्रतिवर्ष एक बार अवश्य प्रयोग करनी चाहिये। अन्तिम जुताई के समय खेत में 350 से 400 किलो नीम खल प्रति हैक्टेयर की दर से भूमि में बुवाई से पूर्व मिला देनी चाहिये। जैविक मूंग मृदा स्वास्थ्य कार्ड की सिफारिश के अनुरूप वर्मीकंपोस्ट (केचुआ खाद) मिट्टी में मिलाये तथा पंचगव्य 4 प्रतिशत की दर से बुवाई के 15, 30 तथा 45 वें दिन पर्णीय छिड़काव करने से उत्पादन में वृद्धि होती है। जैविक मूग में 4 प्रतिशत गौमूत्र एवं 500 ली. जीवामृत का उपयोग करने से उपज में वृद्धि होती है।

खरपतवार नियंत्रण : मूंग की फसल को खरपतवारों से मुक्त रखने के लिए कम से कम दो बार निराई गुड़ाई की आवश्यकता होती है। प्रथम गुड़ाई बुवाई के 15 दिन बाद और दूसरी 30 से 40 दिन बाद करनी चाहिये।

कीट एवं रोग नियंत्रण

रोग–कीट नियंत्रण के लिये निम्न उपायों का समन्वित प्रयोग करना चाहिये।

1 स्वस्थ, रोग–कीट रहित बीज का चयन कर 6–8 मिली ट्राइकोडर्मा तरल से प्रति किलो बीज को उपचारित कर बुवाई करनी चाहिये।

2 अच्छी पकी हुई जैविक खाद का प्रयोग 5.0 टन प्रति हैक्टेयर की दर से भूमि तैयारी के समय करना चाहिये।

3 खेत की बाड़ व बीच में पंक्तियों में कई प्रकार के फूलदार वृक्ष–झाड़ी लगाने चाहिये जिससे फसल के लिए लाभकारी कीटों को आश्रय व भोजन मिलता रहे। खेत की बाड़ पर कुछ वृक्ष नीम के भी लगाने चाहिये ताकि जैविक कीट नियंत्रण बनाने हेतु निम्बोली मिल सके।

4 नीम आधारित जैविक कीट नियंत्रक घोल का छिड़काव सायंकाल ही करना चाहिये।

5 रोग–कीट नियंत्रण के लिये निम्न उपायों का समन्वित प्रयोग करना चाहिये।

कातरा : कातरा का प्रकोप विशेष रूप से दलहनी फसलों में बहुत होता है। इस कीट की लट पौधों को आरम्भिक अवस्था में काट कर बहुत नुकसान पहुंचाती है। इसके नियंत्रण हेतु खेत के आस पास कचरा नहीं रहना चाहिये। कातरे की लटों पर राख 20–25 किलो मात्र प्रति हैक्टेयर की दर से भुरकाव कर देनी चाहिये।

मोयला, सफेद मक्खी एवं हरा तेला :

ये सभी कीट मूंग की फसल को बहुत नुकसान पहुंचाते हैं। इसकी रोकथाम के लिए नीम तेल (300 पी.पी.एम.) का 15 मि.ली. प्रति 1 लीटर पानी की दर से मिलाकर छिड़काव करना चाहिये। इनकी रोकथाम के लिए आवश्यकतानुसार दोबारा छिड़काव किया जा सकता है। इनकी रोकथाम के लिए आवश्यकतानुसार दोबारा छिडकाव किया जा सकता है। जैविक मूंग में रस चूसने वाले कीटों (सफेद मक्खी, हरा तेला) की रोकथाम हेतु कीटनाशक सख्त पर्णीय काढ़ा का 75 लीटर प्रति हेक्टर की दर से 500 लीटर पानी में घोलकर बुवाई के 50, 60 व 70 वें दिन छिडकाव करें।

फसल चक्र : अच्छी पैदावार प्राप्त करने एवं भूमि की उर्वरा शक्ति बनाये रखने हेतु उचित फसल चक्र आवश्यक है। वर्षा आधारित खेती के मूंग–बाजरा तथा सिंचित क्षेत्रों में मूंग–गेंहू/जीरा/सरसों फसलचक्र अपनाना चाहिये।

बीज उत्पादन : मूंग के बीज उत्पादन हेतु ऐसे खेत चुनने चाहिये जिनमें पिछले मौसम में मूंग नहीं उगाया गया हो। भूमि की अच्छी तैयारी, उचित खाद एवं उर्वरकों का प्रयोग, खरपतवार, कीड़े एवं बीमारियों के नियंत्रण के साथ साथ समय समय पर अवांछनीय पौधों को निकालते रहना चाहिये तथा दाना निकालकर ग्रेडिंग कर लेना चाहिये। बीज में नमी 8–9 प्रतिशत से अधिक नहीं होनी चाहिये। बीज में 20 मिली सरसों का तेल प्रति किलोग्राम बीज में मिलाकर सूखे और ठण्ड़े स्थान में रख देना चाहिये। इस प्रकार पैदा किये बीज को बुवाई के लिये प्रयोग किया जा सकता है।

कटाई एवं उपज : मूंग की फलियां जब काली पड़ने लगें तथा पौधा सूख जाये तो फसल की कटाई कर लेनी चाहिये। अधिक सूखने पर फलियां चिटकने का डर रहता है। फलियों से बीज को थैसर द्वारा अलग कर लिया जाता है। उचित विधियों के प्रयोग द्वारा खेती करने पर मूंग की 12–16 क्विंटल प्रति हैक्टेयर वर्षा आधारित फसल द्वारा उपज प्राप्त हो जाती है।

प्रमाणीकरण : जैविक उत्पादन को उपभोक्ता व बाजार का विश्वास प्राप्त करने के लिए इसको प्रमाणित कराने की आवश्यकता होती है। इसके लिए भारत सरकार से मान्यता प्राप्त किसी संस्था से पंजीकरण कराना चाहिये। सब कुछ सुचारू रूप से नियमानुसार होने पर तीन वर्ष पूरे होने पर जैविक प्रमाणपत्र मिल जाता है जिसके आधार पर प्रमाणित जैविक उत्पाद का विक्रय किया जा सकता है। जैविक प्रमाणीकरण करवाने हेतु निम्नलिखित सरकारी संस्थान से सम्पर्क किया जा सकता है।

मक्का : मक्का के लिए ऐसे खेत का चुनाव करें, जिसमें जल निकास की पूरी व्यवस्था हों मिट्टी चिकनी तथा रेतीली दोमट मिट्टी मक्का के लिए उपयुक्त है। भूमि क्षारीय नहीं होनी चाहिये, पहली जुताई मिट्टी पलटने वाले

हल से एवं बाद में देशी हल, त्रिफाली या बक्खर से जुताई करके खेत अच्छी तरह तैयार करें। अच्छे अंकुरण के लिए मिट्टी में पर्याप्त नमी पर्याप्त नमी होनी चाहिये।

भूमि उपचार: दीमक के प्रकोप से बचाव हेतु नीम की खली या करज की खली 2 क्वि. प्रति हैक्टेयर की दर से आखिरी जुताई के समय खेत में मिलायें।

खाद का प्रयोग : बुवाई के 21 दिन पूर्व 13.5 टन गोबर की खाद प्रति हैक्टयर खेत में डाल कर भली–भांति मिलायें। बीजों को ऐजेक्टोबेक्टर एवं पी.एस.बी. कल्चर से उपचारित करके बोयें। छाया में सुखाने के बाद शीघ्र बुवाई करें। यदि खेत में बेंचा की हरी खाद दी गई हो तो 9 टन गोबर की खाद प्रति हैक्टयर पर्याप्त रहती हैं।

बीज उपचार: बुवाई के पूर्व बीजों को 6 ग्राम ट्राइकोडर्मा प्रति किलो बीज दर से उपचारित करें।

बुवाई: प्रति हेक्टेयर 20 से 25 किलो प्रमाणित बीज बोयें। बुवाई जून के अंत या जुलाई के प्रथम सप्ताह तक करें। जहां सिंचाई उपलब्ध हो यहां सिंचाई कर मक्का की बुवाई 15 से 20 जुन तक करें। बुवाई हल के पीछे कतारों में करें, कतार से कतार की दुरी 60 सेंटीमीटर एवं पौधे की दूरी 25 सेंटीमीटर रखें। बीज की गहराई 5 सेंटीमीटर से ज्यादा न रखें।

अन्तराशस्य: मक्का को जुड़वा कतारों (30 से.मी) में बोवे तथा 2 जोड़ो के बीच उड़द अथवा सोयाबीन की दो कतार लगाकर 22 के अनुपात में अंतरशस्य करने अधिक आमदानी सुनिश्चित की जा सकती है।

निराई–गुड़ाई एवं सिंचाई : पौधों की बढ़वार के समय तथा माजरें आते समय पानी की अधिक आवश्यकता होती है। यदि वर्षा न हो तो इस समय सिंचाई अवश्य करें। मक्का की फसल को शुरू के 30 दिन तक खरपतवार से मुक्त रखना चाहिए। अतः खेत में खरपतवार निकालतें रहना चाहिये। गुड़ाई करते समय ध्यान रखें कि पौधों की जड़े न कट जाए।

पौध संरक्षण : मक्का में तना छेदक कीट के नियंत्रण हेतु जैविक अण्ड परजीवी टाइकोग्रामा किलोनिस 1.5 लाख प्रति हैक्टेयर की दर से 10, 20, 30 दिन की फसल अवस्था पर तीन बार अण्ड परजीवी के कार्ड के टुकड़े प्रति हैक्टेयर, पतियों की निचली सतह पर लगाकर छोड़े अथवा मक्का अंकुरण के 10 से 20 दिन बाद नीम की निबोंली के रस के 5 प्रतिशत घोल का छिड़काव करें। आवश्यकता पड़ने पर इसे दोहरायें।

मूंगफली

खेत की तैयारी: रेतीली दोनट एवं भारी मटियार दोमट मिट्टी, जिसमे जल निकास की पूर्ण व्यवस्था हो फसल के लिए उपयुक्त रहती है। खेत की जुताई दो बार मिटटी पलटने वाले हल से व दो बार जुताई कल्टीवेटर से करके पाटा लगाकार मिट्टी को भूर–भूरी बना ले।

बोने का समय : गूगफली की बुवाई जून के प्रथम सप्ताह से तीसरे सप्ताह तक करना उपयुक्त रहता है। देरी से बुवाई करने पर पैदावार में कमी आती है।

बीज दर व फसल ज्योमिति: एक हेक्टेयर खेत के लिए झुमका किस्म का 100 किलो बीज (गुली) प्रति हेक्टेयर बोये । इन किस्मों हेतु कतार से कतार के बीच की दूरी 30 सेमी. तथा पीधे से पौधे के बीच की दूरी 10 सेमी. रखें। फैलने वाली किरमों का 80 किग्रा. प्रति हैक्टेयर रखे। इन किस्मो हेतु कतार से कतार की दुरी 40 सेमी से 45 सेमी व पौधों से पौधे की दुरी 15–20 सेमी रखे।

उर्वरक प्रबंधन : अंतिम जुताई से पूर्व सड़ी हुई गोबर की खाद 4 टन, रॉक फारफेट 250 कि.ग्रा., जिप्सम 250 कि.ग्रा./हेक्टेयर व बीडी 500 की 900 ग्राम मात्रा प्रति हेक्टेयर की दर से देकर मिट्टी में मिला देवें। जिप्सम 250 कि.ग्रा. प्रति हैक्टेयर की दर से फसल की कतारों के बीच डालकर दूसरी निराई गुडाई (35–40 दिन बाद) के साथ मिट्टी मे मिला देवे। बीडी 500 का 36 ग्राम / हेक्टेयर की दर से 45 लीटर पानी में घोलकर 40–45 दिन की फसल में छिड़काव करें।

निराई गुढाई: पहली निराई गुडाई फसल बुवाई के 15–25 दिन की अवस्था पर व दूसरी निराई गुडाई बुवाई के 35–40 दिन की अवस्था पर करे एवं पौधो की जड़ो पर मिट्टी चढ़ाये। दूसरी गुडाई के उपरांत निकाले गये खरपतवारों को कतारों के मध्य पलपार के रूप में डाल देने से खरपतवार नियंत्रण होता है। बुवाई के समय फसल की कतारों के बीज तैयार बोने व पहली गुडाई के साथ ढेंचा को मिट्टी में मिला देने से खरपतवार नियंत्रण होता है।

सिंचाई: मूंगफली की बुवाई जून के प्रथम व दूसरे सप्ताह में करने पर वर्षा आरम्भ होने से पहले 2–3 सिचाई की आवश्यकता होती है। फसल में फूल व फलिया बनते समय वर्षा न होने पर सिंचाई अवश्य करें।

कटाई गहाई : फसल की पत्तियों पीली पड़कर झड़ने लगे व कलिया कठोर होने की अवस्था पर फलियों को भूमि में से निकाले 2–3 दिन खेत में सूखाकर, खलियान में इकट्ठा करे व दो–तीन बार फसल को उलट–पलट करके अच्छी तरह से सूखा लें। उसके बाद ट्रेक्टर चालित मूंगफली गहाई थ्रेसर द्वारा फलियों की गहाई कर लेगे।

भण्डारण : फलियो का भण्डारण गहाई के बाद 3–5 दिन धूप में सूखाने के बाद बोरियो में भरकर ठण्डे व हवादार स्थान पर रखें।

पौध संरक्षण

पत्ती धब्बा रोग : मुगफली की फसल में पत्ती धब्बा रोग जैसे टिक्का एवं पछेती पत्ती धब्बा रोग नियंत्रण हेतु लहसुन रस (10 प्रतिशत) से बीजोपचार एवं रोग दिखते ही 10 दिनों के अंतराल पर दो छिडकाव करे।

सफेद मूंग एवं पत्ती सुरंगक नीम खली (200 किलो/हेक्टेयर) एवं मेटाराइजियम (10–15 किलो/हेक्टेयर।) द्वारा भूमि उपचार कर बुवाई करे। नीम बीज आवरण रस (5 प्रतिशत) एवं नीन तेल 4 प्रतिशत 30 एवं 55 दिन की फसल अवस्था पर छिडकाव करे। पत्ती सुरंगक के नियंत्रण हेतु सोयाबीन को मुगफली की फसल के साथ अंतर फसल के रूप में बोया जा सकता है। मूंगफली में तम्बाकू इल्ली के नियंत्रण हेतु ट्रायकोग्रामा कार्ड, एन.पी.वी एवं नोमुरिया रैली नामक जैविक कीटनाशकों का उपयोग किया जा सकता है।

परंपरा और प्रगति : राजस्थान में प्राचीन व आधुनिक जल प्रबंधन

शालिनी मीणा, उदिती धाकड, रामकिशन मीणा एवं योगेन्द्र कुमार मीणा

कृषि महाविद्यालय, कोटा, कृषि विज्ञान केन्द्र, झालावाड़

भौगोलिक क्षेत्र के हिसाब से भारत का सबसे बड़ा राज्य राजस्थान, देश के उत्तर–पश्चिमी भाग में स्थित है और मुख्य रूप से शुष्क से लेकर अर्ध–शुष्क जलवायु की विशेषता रखता है। यह पर्यावरणीय सेटिंग इस क्षेत्र में जीवन के लगभग हर पहलू को आकार देती है –कृषि और उद्योग से लेकर घरेलू जल उपयोग और पारिस्थितिकी तंत्र स्थिरता तक। राज्य में औसतन सालाना लगभग 575 मिमी वर्षा होती है, लेकिन इसका वितरण कम और अनिश्चित दोनों है, जैसलमेर और बाड़मेर जैसे पश्चिमी जिलों में अक्सर 200 मिमी से कम वर्षा दर्ज की जाती है, जबकि कोटा और उदयपुर जैसे दक्षिण–पूर्वी जिलों में काफी अधिक वर्षा हो सकती है। यह असमान और अनिश्चित वर्षा पैटर्न जल सुरक्षा के लिए एक विकट चुनौती है। केंद्रीय भूजल बोर्ड के अनुसार, भारत की कुल आबादी का 5% से अधिक होने के बावजूद, राजस्थान में देश के कुल सतही जल का केवल 1.16% और इसके भूजल संसाधनों का 1.72% ही उपलब्ध है। मांग और उपलब्धता के बीच इस भारी असंतुलन के कारण ग्रामीण और शहरी दोनों क्षेत्रों में पानी की कमी बनी हुई है। भूजल पर अत्यधिक निर्भरता, जो सिंचाई के लिए 80% से अधिक और पीने के पानी की आपूर्ती के लिए 50% से अधिक का योगदान करती है, के परिणामस्वरूप जलभृतों में तेजी से कमी आई है जिनमें से कुछ अब गंभीर रूप से निम्न स्तर पर हैं।

जलवायु संबंधी बाधाओं के अलावा, बार–बार सूखा पड़ना, उच्च वाष्पीकरण दर और अपर्याप्त जल भंडारण बुनियादी ढांचा इस संकट को और बढ़ा देते हैं। कृषि उत्पादकता, जो ग्रामीण अर्थव्यवस्था की रीढ़ है, अक्सर अपर्याप्त जल उपलब्धता के कारण बाधित होती है, जिससे फसल खराब हो जाती है, आजीविका असुरक्षित हो जाती है और यहां तक कि जल की कमी वाले गांवों से पलायन भी होता है। शहरी केंद्र भी जनसंख्या वृद्धि और पानी की बढ़ती मांग के दबाव का सामना कर रहे हैं, जो अक्सर दूर के स्रोतों और ऊर्जा–गहन जल परिवहन प्रणालियों पर निर्भर करते हैं। इस संदर्भ में, राजस्थान में सतत जल प्रबंधन न केवल एक वांछनीय पर्यावरणीय लक्ष्य है इसे पहचानते हुए, राज्य ने अभिनव जल प्रबंधन प्रथाओं के लिए एक अग्रणी परिदृश्य विकसित किया है जो सदियों पुरानी पारंपरिक ज्ञान को आधुनिक वैज्ञानिक दृष्टिकोणों के साथ मिलाता है। सामुदायिक भागीदारी, विकेन्द्रीकृत जल प्रशासन और स्वदेशी जल संचयन प्रणालियों के पुनरुद्धार ने एक बार खराब हो चुके पारिस्थितिकी तंत्र को उत्पादक और लचीले परिदृश्यों में बदलने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। आज, राजस्थान जल संरक्षण प्रयासों के लिए एक जीवंत प्रयोगशाला के रूप में खड़ा है, जो न केवल भारत में बल्कि दुनिया भर में अन्य शुष्क और अर्ध–शुष्क क्षेत्रों को मूल्यवान सबक प्रदान करता है। राज्य में स्थायी जल प्रबंधन की दिशा में यात्रा समग्र, समावेशी और दीर्घकालिक रणनीतियों के महत्वपूर्ण महत्व को रेखांकित करती है जो पानी को योजना और विकास के केंद्र में रखती है।

राजस्थान में जल संकट की चुनौती : हाल के वर्षों में आश्चर्यजनक रूप से उच्च मानसूनी वर्षा प्राप्त करने के बावजूद, राजस्थान में अंतर्निहित जल संकट की समस्या बनी हु है। ऐतिहासिक रूप से, राज्य को भारत में सबसे शुष्क माना जाता है, जिसका लगभग दो–तिहा क्षेत्र शुष्क या अर्ध–शुष्क के रूप में वगह्न त है। यह भौगोलिक वास्तविकता, बढ़ती आबादी, शहरीकरण और जलवायु परिवर्तन के प्रभावों के साथ मिलकर जल संकट को बढ़ाती है।

कम और अनियमित वर्षा : राज्य के कई स्थानों पर उच्च वर्षा की अवधि अधिक हो सकती है, लेकिन कुल वार्षिक औसत वर्षा कम है। पश्चिमी राजस्थान के कई इलाकों में सालाना 300 मिमी से भी कम वर्षा होती है।

भूजल की कमी : सिंचाई और घरेलू उपयोग के लिए भूजल के अत्यधिक दोहन से जल स्तर में तेजी से गिरावट आई है। 2017 तक, 236 ब्लॉकों में से 190 में भूजल स्तर को 'डार्क जोन' के रूप में वर्गीकृत किया गया था, जो गंभीर कमी को दर्शाता है।

सीमित सतही जल संसाधन : राजस्थान में बारहमासी नदियों की कमी है, और इसके सतही जल स्रोत, जिनमें जलाशय और झीलें शामिल हैं, वर्षा पर बहुत अधिक निर्भर हैं, जिससे वे उतार–चढ़ाव के लिए अतिसंवेदनशील हो जाते हैं। कई नदियाँ मौसमी हैं, जिससे रुक–रुक कर पानी की उपलब्धता होती है।

जल गुणवत्ता के मुद्दे : औद्योगिक अपशिष्टों, कृषि अपवाह और भूजल में उच्च फ्लोराइड और लवणता की मात्रा से प्रदूषण पानी की कमी की समस्या को और बढ़ाता है, जिससे कई स्रोत पीने के लिए असुरक्षित हो जाते हैं। कुछ ग्रामीण क्षेत्रों में, भूजल में फ्लोराइड की सांद्रता 2023 में 37 मिलीग्राम/लीटर तक बताई गई है।

जलवायु परिवर्तन के प्रभाव : वर्षा के पैटर्न में बदलाव, सूखे और बाढ़ जैसी चरम मौसम की घटनाओं की बढ़ती आवृत्ति और बढ़ते तापमान से राज्य के जल संसाधनों पर और दबाव पड़ने का अनुमान है। अनुमानों के अनुसार 2050 तक औसत वाृषक वर्षा में 5-20% की संभावित कमी हो सकती है।

राजस्थान में उचित जल प्रबंधन की महत्वता : राजस्थान के लिए सतत जल प्रबंधन महत्वपूर्ण है। सतत अभ्यास पीने, कृषि और आजीविका के लिए पानी की दीर्घकालिक उपलब्धता सुनिश्चित करते हैं, साथ ही पारिस्थितिकी तंत्र की रक्षा भी करते हैं। राजस्थान ने इस चुनौती से निपटने के लिए पारंपरिक और आधुनिक तकनीकों का मिश्रण अपनाया है। जोहड़ और बावड़ियों जैसी प्राचीन संरचनाओं के पुनरुद्धार ने भूजल पुनर्भरण में सुधार किया है। जयपुर जैसे शहरी क्षेत्रों ने छत पर वर्षा जल संचयन को अनिवार्य कर दिया है, जबकि भिवाड़ी में उद्योग उपचारित अपशिष्ट जल का पुनः उपयोग कर रहे हैं। कृषि में, ड्रिप और स्प्रिंकलर सिंचाई को बढ़ावा देने से पानी का उपयोग कम हुआ है, और कृषि वानिकी जैसी जलवायु–लचीली खेती की प्रथाएँ लोकप्रिय हो रही हैं। पानी पंचायतों और जल सभाओं के माध्यम से सामुदायिक भागीदारी जल प्रशासन में स्थानीय लोगों को सशक्त बनाती है। अरावली जैसे क्षेत्रों में एकीकृत जलग्रहण विकास, मृदा संरक्षण और वनीकरण के प्रयास जल सुरक्षा को और बढ़ाते हैं। जलवायु परिवर्तन और बढ़ती जल मांग का सामना करने के लिए एक लचीले राजस्थान के निर्माण के लिए ये विविध, क्षेत्र–विशिष्ट दृष्टिकोण महत्वपूर्ण हैं।

पारंपरिक जल प्रबंधन प्रणाली : सदियों से, राजस्थान के लोगों ने शुष्क वातावरण से निपटने के लिए सरल पारंपरिक जल संचयन प्रणाली विकसित की है। ये प्रणालियाँ, जो अक्सर समुदाय द्वारा प्रबंधित होती हैं, स्थानीय जल विज्ञान और जलवायु की गहरी समझ को प्रदर्शित करती हैं।

नाड़ियाँ : ये गाँव के तालाब या जलाशय हैं जो वर्षा जल अपवाह को रोकने के लिए प्राकृतिक अवसादों पर मिट्टी के तटबंध बनाकर बनाए जाते हैं। पश्चिमी राजस्थान में प्रमुख, वे मुख्य रूप से पशुओं और कुछ मामलों

में मनुष्यों की पानी की जरूरतों को पूरा करते हैं। पहली दर्ज की गई नाडी 1520 की है।

टोबा : ये प्राकृतिक जलग्रहण क्षेत्रों वाली ज़मीनी खाइयाँ हैं, जिन्हें नाड़ियों से पानी इकट्ठा करने के लिए डिजाइन किया गया है, जिसका उपयोग मुख्य रूप से सिंचाई और पीने के पानी के लिए किया जाता है, खासकर गहरे रेगिस्तानी इलाकों में।

खड़ीन : जैसलमेर में 15वीं शताब्दी में शुरू हुई, ये ऐसी सरल प्रणालियाँ हैं जो मानसून के दौरान अस्थायी जल झीलों को बनाने के लिए ढलान वाली ज़मीन पर बनाए गए लंबे मिट्टी के तटबंधों का उपयोग करती हैं। एकत्र किया गया पानी मिट्टी में रिसता है, जिससे पानी के कम होने के बाद खेती के लिए नमी मिलती है। ये उत्तरी जैसलमेर में विशेष रूप से आम हैं।

टंका/कुंड : ये गोलाकार भूमिगत जल भंडारण संरचनाएँ हैं, जिन्हें अक्सर घरों या सार्वजनिक स्थानों के भीतर बनाया जाता है, छतों या आँगन से एकत्र किए गए वर्षा जल को संग्रहीत करने के लिए पत्थर या सीमेंट से बनाया जाता है। ये पीने के पानी के एक महत्वपूर्ण स्रोत के रूप में काम करते हैं, खासकर पश्चिमी राजस्थान के सूखे इलाकों में।

बावरी/झालारा (सीढ़ीदार कुएँ) : ये जटिल रूप से डिजाइन किए गए सामुदायिक कुएँ हैं, जिनमें जल स्तर तक पहुँचने के लिए सीढ़ियाँ हैं, जिससे जल स्तर कम होने पर भी पानी का उपयोग किया जा सकता है। ये न केवल एक विश्वसनीय जल स्रोत प्रदान करते थे, बल्कि सामाजिक सभा स्थल के रूप में भी काम करते थे। झालारा मानव निर्मित टैंक हैं, जिनका उपयोग मुख्य रूप से सामुदायिक स्नान और धार्मिक समारोहों के लिए किया जाता है, जो ऊपर की ओर के जल निकायों से भूमिगत बहिर्वाह को इकट्ठा करते हैं। कुछ सबसे पुरानी बावड़ियाँ 550 ई.पू. की हो सकती हैं, जिनका निर्माण मध्यकाल के दौरान महत्वपूर्ण रूप से किया गया था।

जोहड़ : वर्षा जल को इकट्ठा करने और संग्रहीत करने के लिए ढलान वाले क्षेत्रों पर बनाए गए छोटे, मिट्टी के चेक डैम, भूजल पुनर्भरण और मिट्टी की नमी में सुधार करते हैं।

बेरी/कुई : पानी तक पहुँचने और उसे संग्रहीत करने के लिए खोदे गए छोटे, उथले गड्ढे, अक्सर गोलाकार और कुओं से कम गहरे होते हैं।

ये पारंपरिक प्रणालियाँ टिकाऊ हैं क्योंकि वे स्थानीय संसाधनों और प्रा तिक प्रक्रियाओं पर निर्भर हैं। इनमें से कई आज भी उपयोग में हैं, जो राजस्थान की जल प्रबंधन रणनीति में उनकी स्थायी प्रासंगिकता को उजागर करता हैं। पारंपरिक जल संचयन संरचनाओं को पुर्नजीवित करें और बनाए रखें। कई पारंपरिक प्रणालियाँ जीर्ण–शीर्ण हो गई हैं। उनका पुनरुद्धार और नियमित रखरखाव विकेन्द्रीकृत जल भंडारण और भूजल पुनर्भरण के लिए महत्वपूर्ण है। अलवर, जोधपुर और जयपुर जैसे जिलों में, सामुदायिक प्रयासों और तरुण भारत संघ जैसे गैर सरकारी संगठनों के माध्यम से जोहड़ और बावड़ियों जैसी पारंपरिक प्रणालियों को पुर्नजीवित किया गया है। अलवर में 8,000 से अधिक जोहड़ों को बहाल किया गया, जिससे पाँच नदियों का कायाकल्प हुआ और भूजल स्तर में 6–10 मीटर की वृद्धि हुई। शहरों में, विरासत संरक्षण और स्थानीय जल पुनर्भरण दोनों का समर्थन करने के लिए तूरजी का झालरा जैसी बावड़ियों को बहाल किया गया है।

आधुनिक जल प्रबंधन तकनीक और सरकारी पहल : बढ़ते जल संकट को देखते हुए, राजस्थान सरकार ने विभिन्न आधुनिक तकनीकों को लागू किया है और स्थायी जल प्रबंधन को बढ़ावा देने के लिए पहल शुरू की है।

बावरी / झालारा (सीढ़ीदार कुएँ)

टांका

जोहड़

बेरी / कुई

मुख्यमंत्री जल स्वावलंबन अभियान : 2016 में शुरू किया गया, यह प्रमुख कार्यक्रम वर्षा जल संचयन संरचनाओं के निर्माण और जीर्णोद्धार, पारपरिक जल निकायों के पुनरुद्धार और कुशल जल उपयोग प्रथाओं को बढ़ावा देने के माध्यम से गांवों को पानी में आत्मनिर्भर बनाने पर केंद्रित है। 2023 तक, इस योजना ने 12000 से अधिक गांवों को कवर किया था, जिसमें 3.90 लाख वर्षा जल संचयन संरचनाएं बनाई गई थी। प्रारंभिक चरणों के प्रभाव आकलन ने भूजल पुनर्भरण (कुछ क्षेत्रों में कथित तौर पर चार गुना), कृषि उत्पादकता में सुधार और लाखों लोगों

और पशुओं के लिए पानी की पहुँच में उल्लेखनीय वृद्धि दिखाई। "चार जल अवधारणा" (वर्षा जल, सतही जल, मिट्टी की नमी और भूजल) और "रिज टू वैली तकनीक" इस पहल के केंद्र में हैं। ग्राम सभाओं में जल बजट समान वितरण सुनिश्चित करता है।

कर्म भूमि से मातृ भूमि योजना : हाल ही में (दिसंबर 2024) शुरू की गई इस योजना का उद्देश्य "जल संचय जन भागीदारी पहल" पर आधारित क्राउडफंडिंग के माध्यम से जल पुनर्भरण संरचनाओं का निर्माण करके जल संरक्षण में सामुदायिक भागीदारी को बढ़ाना है।

वाटरशेड विकास कार्यक्रम : ये कार्यक्रम मृदा और जल संरक्षण उपायों, वर्षा जल संचयन, वनीकरण और ड्रिप और स्प्रिंकलर सिंचाई जैसी कुशल सिंचाई तकनीकों को बढ़ावा देने के माध्यम से सूक्ष्म वाटरशेड के एकीकृत विकास पर ध्यान केंद्रित करते हैं। वाटरशेड ऑर्गेनाइजेशन ट्रस्ट (WOTR) जैसे संगठन ऐसी परियोजनाओं में सक्रिय रूप से शामिल रहे हैं, जिससे कई जिलों में भूजल स्तर, फसल उत्पादकता और पर्यावरणीय स्वास्थ्य में सुधार हुआ है। उदाहरण के लिए, उदयपुर और करौली में WOTR के "वसुंधरा ग्राम विकास कार्यक्रम" ने महत्वपूर्ण सकारात्मक प्रभाव प्रदर्शित किए हैं।

राष्ट्रीय झील संरक्षण परियोजना और अन्य झील बहाली पहल : इन परियोजनाओं का उद्देश्य शहरी और ग्रामीण क्षेत्रों में प्राकृतिक जल निकायों को संरक्षित और बहाल करना है, ताकि जल भंडारण और जैव विविधता संरक्षण में उनकी भूमिका सुनिश्चित हो सके।

जल–कुशल कृषि को बढ़ावा देना : ड्रिप और स्प्रिंकलर सिंचाई प्रणालियों को बढ़ावा देने से कृषि में पानी की खपत को काफी हद तक कम करने में मदद मिलती है, जो राजस्थान में सबसे बड़ा जल–उपभोग करने वाला क्षेत्र है (कुल जल उपयोग का लगभग 80%)। सूक्ष्म सिंचाई तकनीकों, सूखा प्रतिरोधी फसलों और टिकाऊ कृषि प्रथाओं को अपनाने को प्रोत्साहित करने से कृषि में पानी की मांग में काफी कमी आ सकती है। पीएमकेएसवाई के तहत सरकारी सब्सिडी के साथ, किसान ड्रिप और स्प्रिंकलर सिंचाई की ओर बढ़ रहे हैं, जिससे पानी का उपयोग 30–70ः तक कम हो गया है। पानी की अधिक खपत वाले धान की जगह बाजरा और दालों की खेती ने सिंचाई के लिए पानी की मांग को कम किया है, साथ ही मिट्टी की सेहत में भी सुधार हुआ है।

घरेलू और औद्योगिक क्षेत्रों में जल उपयोग दक्षता में सुधार : शहरी क्षेत्रों में पानी की बर्बादी को कम करने और उद्योगों में पानी के पुनर्चक्रण और पुनः उपयोग को बढ़ावा देने के उपायों को लागू करना आवश्यक है। जयपुर में, अनिवार्य शहरी नियोजन मानदंडों के हिस्से के रूप में 35,000 से अधिक छत वर्षा जल संचयन प्रणालियाँ स्थापित की गई हैं। भिवाड़ी में, उद्योग उपचारित अपशिष्ट जल का पुनः उपयोग गैर–पेय प्रयोजनों के लिए करते हैं, जिससे मीठे पानी का उपयोग 40p तक कम हो जाता है।

सहभागी जल प्रबंधन : पानी पंचायतों (जल परिषदों) और अन्य सहभागी दृष्टिकोणों के माध्यम से जल संसाधन प्रबंधन में स्थानीय समुदायों को सशक्त बनाना न्यायसंगत और टिकाऊ जल उपयोग सुनिश्चित कर सकता है। लापोरिया और डुडू जैसे गांवों ने "चौका प्रणाली, पानी पंचायत और जल सभा" जैसे सहभागी दृष्टिकोण अपनाए हैं, जो स्थानीय लोगों को सामूहिक रूप से जल वितरण, बजट और बुनियादी ढांचे के रखरखाव का प्रबंधन करने में मदद करते हैं।

एकीकृत जलग्रहण प्रबंधन : भूमि, जल और वनस्पति के बीच अंतर्संबंधों को ध्यान में रखते हुए जलग्रहण क्षेत्रों का समग्र प्रबंधन दीर्घकालिक जल सुरक्षा के लिए महत्वपूर्ण है। अरावली पहाड़ियों जैसे क्षेत्रों में बंजर भूमि का पुनर्वास और वनरोपण भूजल पुनर्भरण को बढ़ाता है और कटाव को कम करता है। ष्व्ज्त् जैसे समूहों द्वारा कार्यान्वित की गई समोच्च बंडिंग और वनस्पति अवरोध जैसी मिट्टी और जल संरक्षण तकनीकें अपवाह को धीमा करती हैं और इंफिल्ट्रेशन में सुधार करती हैं। रोटेशनल चरा जैसी प्रथाओं के माध्यम से पशुधन प्रबंधन को शामिल करने से वनस्पति और वाटरशेड स्वास्थ्य की और अधिक सुरक्षा होती है।

जलवायु–लचीली जल प्रबंधन रणनीतियाँ : जलवायु परिवर्तन के प्रभावों को ध्यान में रखते हुए रणनीतियों का विकास और कार्यान्वयन करना, जैसे कि जल भंडारण क्षमता में वृद्धि और सूखे की तैयारी की योजनाएँ, महत्वपूर्ण हैं। बड़े जल भंडारण जलाशयों और टैंकों के निर्माण से अतिरिक्त वर्षा जल को इकट्ठा करने में मदद मिलती है, जिससे सूखे के दौरान आपूर्ति सुनिश्चित होती है। जल राशनिंग और आपातकालीन सहायता जैसे उपायों के साथ जिला–स्तरीय सूखा तैयारी योजनाएँ लचीलापन बढ़ाती हैं। इसके अतिरिक्त, कृषि वानिकी को बढ़ावा देने से मिट्टी की नमी में सुधार होता है, छाया मिलती है और जलवायु–लचीली कृषि मजबूत होती है।

जागरूकता और शिक्षा : जल संरक्षण और जिम्मेदार जल उपयोग को बढ़ावा देने के लिए जन जागरूकता अभियान जल–जागरूक समाज को बढ़ावा देने के लिए आवश्यक हैं।

निष्कर्ष : राजस्थान के सतत जल प्रबंधन में अग्रणी कदम दुनिया भर के शुष्क और अर्ध–शुष्क क्षेत्रों के लिए एक परिवर्तनकारी मार्ग को उजागर करते हैं। अत्याधुनिक तकनीकों– ड्रिप सिंचाई, स्वचालित वाटरशेड निगरानी और उपचारित अपशिष्ट जल के पुनः उपयोग के साथ–साथ जोहड़, बावड़ी और टांके जैसी पैतृक प्रणालियों को पुनजीवित करके राज्य ने अपनी जल अभाव को लचीलेपन में बदल दिया है। पानी पंचायतों, जल सभाओं और गाँव–नेतृत्व वाले बजट के माध्यम से सामुदायिक सशक्तिकरण ने साबित कर दिया है कि विकेंद्रीकृत शासन तकनीकी नवाचार जितना ही महत्वपूर्ण है। एमजेएसए और जल जीवन मिशन जैसी ऐतिहासिक पहलों ने संस्थागत समर्थन को प्रेरित किया है, नीति को जमीनी स्तर की कार्रवाई से जोड़ा है। फिर भी, जलवायु परिवर्तन, जनसंख्या वृद्धि और शहरी विस्तार से मंडराते खतरों के लिए निरंतर अनुकूलन की आवश्यकता हैः सख्त भूजल विनियमन, विस्तारित प्रकृति–आधारित समाधान, जलवायु–स्मार्ट कृषि और निरंतर सार्वजनिक जागरूकता। राजस्थान का एकीकृत, बहुस्तरीय मॉडल न केवल अपने जल भविष्य को सुरक्षित करता है, बल्कि एक अनुकरणीय खाका भी प्रस्तुत करता है – जहां परंपरा, प्रौद्योगिकी और समुदाय एक साथ आते हैं – जिससे विश्व भर में जल सुरक्षा और समतापूर्ण विकास को बढ़ावा मिलता है।

***

बहु उद्देशीय मिश्रित अनाज: आटा पोषक मान एवं मूल्य संवर्धित खाद्य उत्पाद

प्रियंका जोशी एवं नवाब सिंह

कृषि विज्ञान केन्द्र, कुम्हेर भरतपुर, राजस्थान

दो या दो से अधिक अनाजों को मिलाकर बनाये गए मिश्रण को मिश्रित अनाज आटा (मल्टी ग्रेन आटा) कहते हैं। प्रायः मिश्रित अनाज आटा 3 से 5 प्रकार के अनाजों का प्रयोग करके बनाया जाता हैं एवं इसे बनाने के लिए अधिक से अधिक 12 से 13 अनाजों का भी प्रयोग किया जा सकता है । सामान्यतः मिश्रित अनाज आटा, साबुत गेहूँ, जौ, जई, कुट्टू अलसी अथवा मोटे अनाजों जैसे ज्वार, बाजरा, रागी का उपयोग करके बनाया जाता है ।

मिश्रित अनाज के आटे से निर्मित व्यंजन स्वाद में बेहतरीन और खाने में खस्ता होते हैं। मिश्रित अनाज के आटे से रोटी, भाखरी, राब, चीला, ब्रेड, केक, कुकीज आदि खाद्य उत्पाद बनाये जा सकते है। मिश्रित अनाज के आटे से बनी रोटी शरीर में सभी आवश्यक पोषक तत्वों की एक साथ पूर्ति करता है। सामान्य आटे से एकमात्र/केवल सीमित मात्रा में ही पोषक तत्व प्राप्त होते है लेकिन, मिश्रित अनाज के आटे से सभी पोषक तत्वों के अतिरिक्त भरपूर मात्रा में रेशा भी मिलता है जो कि पाचन तंत्र को स्वस्थ रखने के साथ ही कब्ज की समस्या से भी निजात दिलाता है। इसमें प्रचुर मात्रा में रेशा होने की वजह से दैनिक आहार में इसके उपयोग से पेट के कैंसर की संभावना को कम किया जा सकता है। मिश्रित अनाज आटा हृदय सम्बन्धी बीमारियों, मधुमेह, उच्च रक्तचाप, मोटापा आदि की रोकथाम में भी फायदेमंद है ।

उपरोक्त लेख में पांच प्रकार के अनाज (जैसे गेहूँ, जौ, ज्वार, रागी व चना) को उपयोग में लाकर मिश्रित अनाज आटा बनाया गया है एवं इनमें उपस्थित पोषक तत्वों की जानकारी व स्वास्थ्य लाभों को निम्नांकित दर्शाया गया है।

गेहूँ : गेहूँ पोष्टिकता की दृष्टि से सर्वोत्तम आहार है। विश्व के प्रत्येक देश में गेहूँ को मुख्य भोजन के रूप में उपयोग किया जाता है। इसमें श्रेष्ठ पोषक तत्थ ग्लिअडिन तथा एनुटेनिन नामक प्रोटीन 8 से 15 प्रतिशत तक पाया जाता है। गेंहूँ के बाहरी आवरण/चोकर में बहुमुल्य खनिज तत्व जैसे कैल्शियम, फॉस्फोरस एवं विटामिन बी होते है। इसका चोकर पौष्टिकता की दृष्टि से महत्वपूर्ण होता है जैसे चोकर युक्त रोटी कब्ज का दूर कर पेट को साफ करती है। गेहूँ को दलिया, मैदा, सूजी एवं अंकुरित गेहूँ के रूप में भी प्रयोग किया जाता है।

जौ : जौ, गेहू की ही भांति बहुमुखी अनाज है। इसमें प्रचुर मात्रा में रेशा, खनिज तत्व जैसे मोलिब्डेनम, मैगनीज, सेलिनियम होता है। यह नियासीन, कॉपर, क्रोमियम, फॉस्फोरस, मैग्नीशीयम का भी अच्छा स्त्रोत है। अंकुरीत जौ में पर्याप्त मात्रा में एमाईलेज, डायस्टेज आदि महत्वपूर्ण एन्जाइम होते हैं जो कि पाचन क्रिया में सहायक होते हैं। जौ के रेशे में बीटाग्लूकेन नामक तत्व पाया जाता है। जिसकी प्रकृति कफ नाशक व पित्तनाशक होती है। यह कॉलेस्ट्रॉल के अवशोषण को प्रतिबंधित कर मल के माध्यम से शरीर से बाहर निकालता है। बुखार, अपच तथा अतिसार में जौ का माण्ड उपयोगी होता है। जौ का दलिया मूत्राशय सम्बंधी रोगों, मधुमेह एवं पित्ताशय के कैंसर में भी लाभकारी होता है।

ज्वार : ज्वार, चावल एवं मक्का की अपेक्षा अधिक गुणकारी एवं पौष्टिक होता है। ज्वार में उच्च कोटि का प्रोटीन उपस्थित होता है व वसा की मात्रा चावल की अपेक्षा 15 गुना ज्यादा होती है। ज्वार का उपयोग करने से शरीर स्वस्थ, तंदरूस्त, हृष्ट–पुष्ट एवं सक्रिय रहता है।

चना : चना बहुउपयोगी एवं बहुउद्देशीय आहार है एवं ऊर्जा का बेजोड़ स्त्रोत है। चने में प्रचुर मात्रा में प्रोटीन, उत्तम किस्म का कार्बोज, वसा और पर्याप्त मात्रा में लौह तत्व, सोडियम, सेलिनियम व रेशा पाया जाता है। अंकुरित चने में विटामिन ए, बी कॉम्पलेक्स, सी तथा एन्जाइम होते हैं। भीगा हुआ व अंकुरित चना कॉलेस्ट्रोल के स्तर को कम करता है व रक्त शर्करा को नियंत्रित करता है। अतः यह हृदय रोग रोधक एवं निवारक होता है। चने के छिलकों में रक्त शोधक तथा कब्ज निवारक गुण होते हैं।

रागी : रागी में आवश्यक एमिनो अम्ल जैसे मिथियोनिन, ट्रिपटोफेन, थियोनिन, वेलिन, आईसोल्यूसिन उपस्थित होता है जो कि अन्य प्रयोग में जानें वाले भोज्य पदार्थ जैसे केला, पॉलिश चावल या मक्का में अपर्याप्त होता है। रागी में उपस्थित प्रोटीन गेहू की तुलना में सुपाच्य होता है। रागी में कैल्शियम, लौह तत्व और अन्य खनिज प्रचुरता में होते है। इसमें वसा की मात्रा कम और मुख्य रूप से असंतृप्त होती है। रागी मधुमेह रोगियों के लिए बहुत उपयोगी आहार है। यह शरीर में पच कर रक्त में धीरे–धीरे अवशोषित होता है और इस कारण रक्त शर्करा बढ़ती नहीं है। यह शरीर को स्वाभाविक रूप से आराम देने में मदद करता है। अर्थात यह अवसाद, अनिंद्रा, सिर दर्द में भी उपयोगी है।

मिश्रित अनाज आटे का पोषक मान : मिश्रित अनाज आटा पौष्टिक, स्वादिष्ट एवं स्वास्थ्यवर्धक होता है। इसमें प्रचुर मात्रा में रेशा, विटामिन बी और खनिज लवण जैसे लौह तत्व, कॅल्शियम, मैग्निशियम, जस्ता, कॉपर एवं सेलिनियम पाया जाता है। मिश्रित अनाज आटे में नमी 5.6 प्रतिशत, प्रोटीन 11.9 प्रतिशत, वसा 1.75 प्रतिशत व रेशा 4.7 प्रतिशत होता है इसमें लौह तत्व 12.4 मि.ग्रा., कैल्शियम 215.4 मि.ग्रा. व जस्ता 3.9 मि.ग्रा. होता है।

मिश्रित अनाज आटे को उपयोग में लाकर विभिन्न भोज्य पदार्थ जैसे रोटी, भाखरी, बाटी, हलवा, मठरी, कुकीज इत्यादि बनाया जा सकता है।

मिश्रित अनाज आटा

सामग्री	मात्रा
गेहूँ	600 ग्राम
जौ	200 ग्राम
ज्वार	100 ग्राम
चना	200 ग्राम
रागी	100 ग्राम

विधि

1. सर्वप्रथम गेहूं, चना, जौ, ज्वार एवं रागी को साफ करके धूप में सुखा लें।
2. सभी अनाज को एक साथ मिलाकर आटा बना लें।
3. आटे को छलनी की सहायता से छान लें।
4. आटे को हवा बन्द डिब्बे में 2 महीने के लिए रख सकते है. आवश्यकतानुसार उपयोग में ला सकते हैं।

मिश्रित अनाज रोटी

सामग्री	मात्रा
मिश्रित अनाज आटा	100 ग्राम
तेल	5 ग्राम
नमक	2 ग्राम
अजवाइन	0.5 ग्राम
घी	2 ग्राम

विधि :

1. मिश्रित अनाज आटे को परात में ले, उसमें नमक, अजवाइन और तेल मिला ले।
2. गुनगुने पानी की सहायता से एक नरम आटा गूंथ ले।
3. गुथे आटे को 10–15 मिनट के लिए ढक्कर रखें, जिससे आटा फूल कर सेट हो जाएगा।
4. तवे को आँच पर रखकर गरम करे।
5. गुंथे आटे की लोई बनाकर, सुखे आटे में लपेट कर हल्की मोटी बेल ले।
6. बेली हुई रोटी को गरम तवे पर डालें व दोनों तरफ हल्की भूरी चिली आने तक सेकें।
7. रोटी को घी लगाकर गरम–गरम परोसे।

मिश्रित अनाज मठरी

सामग्री	मात्रा
मिश्रित अनाज आटा	50 ग्राम
मैदा	50 ग्राम
अजवाइन	1 ग्राम
तिल	3.5 ग्राम
सौंफ	2 ग्राम
लाल मिर्च पाउडर	3 ग्राम
नमक	2 ग्राम
करी पत्ता	कुछ पत्तियाँ
तेल	20 ग्राम (मोयन के लिए)
तेल	200 ग्राम (तानने को लिए)
पानी	40 मि. लीटर

विधि :

1. मिश्रित अनाज आटे व मैदे को एक साथ मिलाकर छलनी से छान लें।
2. इसमें अजवाइन, तिल, सौंफ, नमक, लाल मिर्च पाउडर, फ्लैक्स, बारीक कटा करी पत्ता व तेल डाले व अच्छी तरह से मिला ले।
3. गुनगुने पानी से आटा गुंथ ले व 15–20 मिनट के लिये ढ़क्कर रखें जिससे आटा फुल सेट हो जायेगा।
4. गुंथे हुए आटे की छोटी–छोटी लोई बना लें व बेल ले।
5. बेली हुई मठरी मे काटे की सहायता से दोनों ओर से छेद कर लें। जिससे मठरी तेल में फुलती नहीं है। इसी तरह सारी मठरी को बेलकर तैयार कर लें।
6. तेल में मठरी को धीमी से मध्यम आंच में दोनों ओर से सुनहरा होने तक तले।
7. हवा बन्द डिब्बे में मठरी को रखें।

मिश्रित अनाज कुकीज

सामग्री	मात्रा
मिश्रित अनाज आटा	100 ग्राम
पीसी हुई शक्कर	30 ग्राम
नमक	2.5 ग्राम
अजवाइन	1 ग्राम
घी	50 ग्राम
बेकिंग पाउडर	2.5 ग्राम
बेकिंग सोडा	2.5 ग्राम
दूध	20 मि.ली.

विधि :

1. मिश्रित अनाज आटा को छलनी से छान लें।
2. आटे को बड़े प्याले में डाले व उसमें बैंकिंग सोडा डालकर अच्छी तरह मिला लें।
3. थोड़ा–थोड़ा दूध डाले और मिलाए। अगर मिश्रण सूखा दिखाई दे तो थोड़ा दूध और मिलाएं व आटे को इकट्ठा कर लें।
4. आटे को 20 मिनिट के लिए ढ़क्कर रखें जिससे आटा फूल कर सेट हो जाएगा।
5. बोर्ड पर थोड़ा सा सूखा मैदा डालकर चारों ओर फैलायें।
6. कुकीज का आटा इस सूखे आटे के ऊपर रखकर गोल आकार दीजीये और हाथ से दबाकर थोड़ा बड़ा कर लें।
7. बेलन की सहायता से आधा से पौन सेमी की मोटाई में शीट ब बेलकर तैयार कर लें। कुकीज कटर की मदद से सारे आटे के कुकीज काट ले व ट्रे में रखें।
8. ओवन को 180 डिग्री से. पर प्री हीट करें।
9. कुकीज से भरी ट्रे को ओवन में रखें और ओवन को 180 डिग्री से. पर 10 मिनट के लिए सेट करें।
10. 10 मिनट बाद ओवन से कुकीज निकाले और देखें यदि कुकीज हल्की भुरी नहीं हुई हो तो उन्हें 2–5 मिनट कर चैक करते हुये सुनहरा होने तक बेक कर लें।

मिश्रित अनाज पास्ता

सामग्री	मात्रा
मिश्रित अनाज आटा	500 ग्राम
मैदा	500 ग्राम
सूजी	500 ग्राम
नमक	15 ग्राम
पानी	600 मि.ली.
	2.5 ग्राम
	2.5 ग्राम
	20 मि.ली.

विधि :

1. पास्ता बनाने वाली मशीन में मिश्रित अनाज आटा, मैदा, सूजी व नमक को मशीन के आटा मिलाने वाले भाग में डालें।
2. आटा बनाने के लिए थोड़ा–थोड़ा पानी थोडी–थोड़ी देर में डालें व इस भाँति 15 मिनट में आटा तैयार हो जायेगा।
3. आटे के तैयार होने पर मशीन का दाब निश्चित कर जिस आकार व आकृति का पास्ता बनाना है उस का सांचा लगायें।
4. तैयार पास्ते को ट्रे में एकत्रित कर 4–5 घंटे के लिए सुखायें।
5. सूखे हुए पास्ते को प्याज, लहसुन, अदरक, व टमाटर प्यूरी के साथ मिलाकर बनायें व परोसे।

उक्त वर्णित जानकारी के आधार पर यह कहा जा सकता है कि मिश्रित अनाज आटा पोषक तत्वों की दृष्टि से सर्वोत्तम होने के साथ स्वादिष्ट एवं स्वास्थ्यवर्धक होता है। वर्तमान समय में विभिन्न स्वास्थ्य सम्बंधी बीमारियों को ध्यान में रखते हुए मिश्रित अनाज आटे को उपयोग में लाने की आवश्यकता है। जो कि शरीर को स्वस्थ रखकर आवश्यक पोषक तत्वों की पूर्ति करता है।

***

बायो प्राइमिंग और बायो पॉलिमर: बीज उपचार का जैविक तरीका

नीरज पाराशर एवं राजेश कुमार शर्मा
यांत्रिक कृषि फार्म, उम्मेदगंज, कोटा (कृषि विश्वविद्यालय, कोटा)

बीज उपचार एक महत्वपूर्ण कृषि प्रक्रिया है, जिसके माध्यम से बीजों को बुवाई से पूर्व विभिन्न रसायनों, जैविक उत्पादों या प्रा तिक तत्वों से उपचारित किया जाता है ताकि बीज की गुणवत्ता, अंकुरण क्षमता और फसल की उत्पादकता में वृद्धि की जा सके। यह प्रक्रिया न केवल बीज को रोगों से बचाती है, बल्कि फसल को शुरुआती अवस्था में बेहतर वृद्धि के लिए सक्षम भी बनाती है।

क्यों जरूरी है बीज उपचार : खेती में बीज सबसे पहली जरूरत है। अगर बीज सही हो, तो फसल अच्छी होती है। लेकिन अगर बीज को बोने से पहले रोगों से सुरक्षित न किया जाए, तो वो खराब हो सकते हैं, अंकुरित नहीं होते, या कमजोर पौधे निकलते हैं। अब बीजों को सुरक्षित करने के लिए रासायनिक नहीं, जैविक उपाय भी उपलब्ध हैं – जैसे बायो प्राइमिंग और बायो पॉलिमर कोटिंग, जो सस्ती, असरदार और पर्यावरण के अनुकूल हैं।

बीज उपचार के मुख्य फायदे :

- **बीज जनित रोगों से सुरक्षा :** बीज में छिपे रोगजनकों को नष्ट करता है जिससे पौधों में शुरुआती संक्रमण नहीं होता।
- **अंकुरण क्षमता में वृद्धि :** उपचारित बीज जल्दी और समान रूप से अंकुरित होते हैं, जिससे खेत में पौधों का जमाव अच्छा होता है।
- **प्रारंभिक विकास में मजबूती :** बीज उपचार से पौधों की जड़ प्रणाली मजबूत होती है जिससे उन्हें पोषक तत्व बेहतर रूप से मिलते हैं।
- **उत्पादकता में बढ़ोतरी :** स्वस्थ प्रारंभिक विकास अंततः अधिक उत्पादन में सहायक होता है।
- **कीटनाशक और उर्वरक पर निर्भरता में कमी :** बीज उपचार से कीट और रोगों का प्रभाव कम होता है जिससे रासायनिक छिड़काव की आवश्यकता घटती है।
- **पर्यावरण की रक्षा :** जैविक व प्राकृतिक उपचार विधियाँ पर्यावरण अनुकूल होती हैं और मृदा स्वास्थ्य को बनाए रखती हैं।

बायो प्राइमिंग क्या है :
यह एक तरीका है जिसमें बीजों को सूक्ष्मजीवों वाले घोल में भिगोकर रखा जाता है, जिससे उनका अंकुरण बेहतर होता है और बीमारियों से बचाव भी होता है।

इसके फायदे

- बीज जल्दी और एक समान अंकुरित होते हैं।
- पौधे मजबूत होते हैं।
- बीजजनित रोगों से बचाव होता है।
- फसल की शुरुआती बढ़वार बेहतर होती है।

कैसे करें बायो प्राइमिंग : अच्छे बीज लें। 1 लीटर पानी में 10 ग्राम ट्राइकोडर्मा या एजोटोबैक्टर मिलाएं। बीज को इस घोल में 8–12 घंटे भिगोकर रखें। फिर बीजों को छाया में सुखाकर बोएं।

बायो पॉलिमर क्या है :
बायो पॉलिमर एक जैविक परत है जो बीजों पर लगाई जाती है। इसमें उपयोगी सूक्ष्मजीव होते हैं जो बीज को लंबे समय तक रोगों और कीटों से बचाते हैं।

इसके फायदे :

- बीज की उम्र बढ़ती है।
- बीज बोने के बाद सूक्ष्मजीव मिट्टी में काम करने लगते हैं।
- फसल रोग–मुक्त रहती है।
- रासायनिक दवाइयों की जरूरत कम होती है।

कैसे करें बायो पॉलिमर कोटिंग? 1 लीटर गर्म पानी में 20 ग्राम पॉलिमर पाउडर घोलें और ठंडा करें। इसमें सूक्ष्मजीव मिलाएं (जैसे ट्राइकोडर्मा, राइजोबियम)। बीज को इस मिश्रण में डुबोएं या छिड़काव करें। फिर छाया में सुखाएं।

चरण–1

- **बीज चिपकाने वाला पदार्थ**
- सबसे पहले बीजों को एक चिपचिपे घोल (जैसे गुड़ घोल, गोंद या सी.एम.सी.) के साथ मिलाया जाता है
- उद्देश्यः ताकि भराव सामग्री बीज पर चिपक सके।

चरण–2

- **बीज पर चिपकने वाले पदार्थ का लेप**
- अब चिपकने वाला पदार्थ बीज की सतह से अच्छी तरह चिपक जाता है। बीज थोड़ा गीला और चिपचिपा हो जाता है।

चरण–3

- **भराव सामग्री का छिड़काव**
- अब इन चिपचिपे बीजों पर पाउडर जैसे मिट्टी, चारकोल, टाल्कम पाउडर या पोषक तत्वों का छिड़काव किया जाता है।

चरण–4

- **भराव सामग्री और पोषक तत्वों का मिश्रण**
- यदि आवश्यक हो तो भराव सामग्री में पोषक तत्व ़जैविक उर्वरक, ट्राइकोडर्मा, राइजोबियम आदिक्र मिलाए जाते हैं ताकि बीज अंकुरण में सहायता मिले।

चरण–5

- **बीजों को गोलाई में रोल करना**
- बीजों को मशीन या हाथ से गोलाई में घुमाया जाता है जिससे लेप समान रूप से हर बीज पर चढ़ जाए और वे गोल–मटोल ़पेल्लेटेडक्र हो जाएं।

चरण–6

- **पेलेटेड बीज तैयार**
- अब बीजों का आकार समान हो जाता है जिससे बुवाई मशीन से करना आसान हो जाता है।

चरण–7

- **छाया में सुखाना**
- पेल्लेटेड बीजों को धूप में नहीं, बल्कि छाया में सुखाया जाता है ताकि उनकी गुणवत्ता बनी रहे।

चरण–8

- **बुवाई के लिए तैयार**
- अब यह बीज पूरी तरह तैयार हैं। इन्हें खेत में बोया जा सकता है।

बीज पेलेटिंग प्रक्रिया

दोनों तकनीकों को एक साथ अपनाएं – मिलेगा डबल फायदा!

पहले बीजों को प्राइम करें, फिर उन पर पॉलिमर कोटिंग करें। इससे बीज के अंदर और बाहर दोनों तरफ सुरक्षा मिलती है। फसल की शुरुआत से ही बेहतर बढ़वार होती है।

किसानों के लिए कैसे उपयोगी है ये तकनीक

1) **कम खर्च, ज्यादा फायदा :** रासायनिक दवाइयों और फफूंदनाशकों की जगह ये जैविक उपाय सस्ते और असरदार हैं।
2) **उपज में बढ़ोतरी :** बीज जल्दी अंकुरित होते हैं, पौधे स्वस्थ रहते हैं एवं इससे उत्पादन बढ़ता है।
3) **मिट्टी की सेहत सुधरती है :** ये जैविक सूक्ष्मजीव मिट्टी में पोषक तत्वों की उपलब्धता बढ़ाते हैं।
4) **हर मौसम में मददगार :** बायो प्राइमिंग से बीज सूखा, अधिक नमी या लवणीयता जैसे हालात में भी अच्छी तरह उगते हैं।
5) **टिकाऊ खेती की ओर कदम :** इन तकनीकों से किसान रासायनिक दवाओं पर निर्भर नहीं रहते, जिससे खेती ज्यादा सुरक्षित और टिकाऊ बनती है।

सावधानियाँ :

- हमेशा प्रमाणित जैविक उत्पाद ही लें।
- बीज उपचार के लिए अनुशंसित मात्रा और विधि का पालन अवश्य करें।
- जैविक उपचार के बाद बीज को छाया में सुखाना चाहिए।
- बायो प्राइमिंग करने के बाद तुरंत बुवाई करना सर्वोत्तम होता है।

तो आइए, जैविक बीज उपचार से करें खेती की मजबूत शुरूआत !

एक संपूर्ण किसान केस स्टडी प्रस्तुत है, जिसमें राजस्थान के बूंदी जिले के एक किसान रामलाल गुर्जर के अनुभव को विस्तार से बताया गया है। यह केस स्टडी अन्य किसानों के लिए एक प्रेरणा स्रोत बनेगी और उन्हें बायो प्राइमिंग व बायो पॉलिमर तकनीक अपनाने की दिशा में प्रोत्साहित करेगी।

किसान केस स्टडी : श्री रामलाल गुर्जर, बूंदी (राजस्थान)

कृषक परिचय	समस्या क्या थी	समाधान
नाम : श्री रामलाल गुर्जर गांव : सूरजपुरा, तहसील इंद्रगढ़, जिला बूंदी (राजस्थान) खेती का क्षेत्र : लगभग 6 बीघा (मुख्य फसलें – सोयाबीन, मूंग, चना, उड़द) अनुभव : 15 वर्षो से खेती में सक्रिय	रामलाल जी की मुख्य समस्या यह थी कि बीज बोने के बाद अंकुरण कम होता था। इसके अलावा, पौधों में शुरुआत से ही बीमारी लग जाती थी– जैसे डंपिंग–ऑफ, जड़ सड़न और कमजोर बढ़वार दवाइयों पर खर्च बढ़ रहा था, फिर भी फसल में गुणवत्ता नहीं थी।	जैविक बीज उपचार सन् 2022 में कृषि विज्ञान केंद्र, बूंदी के एक प्रशिक्षण शिविर में रामलाल जी ने बायो प्राइमिंग और बायो पॉलिमर तकनीक के बारे में जाना।

क्या तरीका अपनाया :

- **बायो प्राइमिंग :** सोयाबीन के बीज को ट्राइकोडर्मा के घोल में 10 घंटे तक भिगोया। फिर छाया में सुखाया।
- **बायो पॉलिमर कोटिंग :** एल्गिनेट आधारित जैविक पॉलिमर में राइजोबियम मिलाया। उस घोल से बीजों को कोट किया और फिर बुवाई की।

क्या परिणाम मिला ?

मापदंड	पहले	बायो तकनीक के बाद
अंकुरण दर	65%	90% से अधिक
रोग लगने की दर	25 - 30% पौधे	5 - 8% तक सीमित
दवा पर खर्च	रू.1800 प्रति एकड	रू.600 प्रति एकड़
उपज	4.5 क्विंटल प्रति बीघा	6 क्विंटल प्रति बीघा
बीज की ताकत	कमजोर अंकुरण	मजबूत, तेजी से उगते पौधे

अब हर साल बुआई से पहले मैं बीज को बायो प्राइमिंग और पॉलिमर कोटिंग से तैयार करता हूं। इससे फसल भी स्वस्थ रहती है और जेब पर बोझ भी कम होता है। खेत की मिट्टी भी सुधर रही है।" **– रामलाल गुर्जर, किसान**

अन्य किसानों के लिए संदेश : "जो किसान भाई अब भी बिना उपचार के बीज बो रहे हैं, उन्हें यह जैविक तरीका जरूर अपनाना चाहिए। इससे फसल में दम आता है, खर्च कम होता है और जमीन की उपजाऊ शक्ति भी बचती है। बायो प्राइमिंग और पॉलिमर दोनों खेती के लिए वरदान हैं।"

निष्कर्ष : श्री रामलाल गुर्जर की कहानी यह साबित करती है कि कम लागत, कम रसायन और ज्यादा समझदारी से भी खेती में बड़ा परिवर्तन लाया जा सकता है। जैविक बीज उपचार की ये तकनीकें आज के किसान के लिए लाभकारी, पर्यावरण के अनुकूल और टिकाऊ खेती की ओर एक सशक्त कदम हैं। बायो प्राइमिंग और बायो पॉलिमर जैसी जैविक तकनिकें आज के समय में खेती के लिए एक वरदान है। किसान भाई अगर इनका सही से उपयोग करें, तो फसल में ताकत, खेत में उपज और आमदनी – तीनों बढ़ सकते है।

फसलों में बीजोपचार की उपयोगिता एवं विधि

हरीश वर्मा, के.एम.शर्मा एवं मोहम्मद युनूस

कृषि विज्ञान केन्द्र, बून्दी, कृषि अनुसंधान केन्द्र, कोटा, कृषि विज्ञान केन्द्र झालावाड़

कृषि फसलों को सफलतापूर्वक उगाने के लिए उनकी आधुनिक किस्मों व कृषि विधियों का ज्ञान होना आवश्यक है। फसलोत्पादन के सिद्वान्तों को व्यावहारिक रूप देकर ही उपज बढ़ाई जा सकती है। बीज हमारी खेती की नींव है। अगर यह ही पूर्णरूप से स्वस्थ व विकसित नहीं होगा तो हमारी फसल का उत्पादन भी अच्छा नहीं होगा। इसलिए आवश्यक है कि हम बीज का चुनाव सोच समझकर करें तथा उसे पूर्णतया उपचारित भी करें।

जिस तरह फसल में बीज चयन महत्वपूर्ण है, उसी बीज का उपचार करना भी उतना ही आवश्यक है। आधुनिक समय में खेती की निरन्तर बढ़ती हुई वैज्ञानिक प्रगति से तभी लाभ हो सकता है, जबकि उन्नत किस्मों के शुद्व व अच्छी गुणवत्ता वाले बीजों की बुवाई की जावे साथ ही उसे पूर्णतया उपचारित भी किया जाये क्योंकि अधिकांश बीमारियां बीज जनित होती हैं। सामान्यतः यह देखा गया है कि कृषक भाई फसल बोने से पहले बीज को उपचारित नहीं करते है। उनकी यह धारणा होती है कि बीज को उपचारित करने से कोई फायदा नही होता है या वह बीज को उपचारित करने में आलस करता है। अगर हम बीजोपचार नहीं करेंगे तो जो फसल की अंकुरण क्षमता है वो भी अच्छी नहीं होगी और जैसा कि हम जानते हैं कि ज्यादातर रोग बीज जनित होते हैं जो हमारी खड़ी फसल को नुकसान पहुँचाते हैं। उस अवस्था में हम लोग बहुत अधिक धन उस रोग की रोकथाम में व्यय कर देते हैं फिर भी उस रोग पर पूर्णतया नियंत्रण नहीं कर पाते हैं जिससे हमारा उत्पादन कम हो जाता है, इसलिए फसल बोने से पहले बीज को उपचारित करें।

बीजोपचार के लाभ : बीजोपचार के लाभ उत्तम पौधों, अच्छी गुणवत्ता, पैदावार और रोगों तथा कीटों के नियंत्रण में लगी पूंजी पर अच्छी आय के रूप में दिखाई देता है परन्तु आज भी अधिकांश कृषक अनुपचारित बीज की बुवाई करते है।

- बीज जनित रोगों का नियंत्रण
- बीज का रक्षण
- अंकुरण में सुधार
- कीटों से सुरक्षा
- मृदा कीटों का नियंत्रण

1– कवकनाशी बीजोपचार

कवकनाशी बीजोपचार का उद्देश्य बीज को कवकजनित रोगों से मुक्त रखना है। इसके अन्तर्गत –

- **बीज विसंक्रमण :** उस रोगजनक को समाप्त करना है जिसमें बीज की जीवित कोशिकाओं को विसंक्रमित कर दिया हो।
- **बीज विग्रसन :** बीजाणु या बहुत से रोगजनक बीज में प्रवेश नहीं करते है बल्कि उनकी सतह पर स्थिर होते हैं।
- **बीज रक्षण :** बीज में प्रवेश करने या उसकी सतह पर स्थित होने के बजाय अनेक रोगजनक जीव मृदा में होते हैं वे बुआई के बाद बीज और तरुण पौधें को क्षति पहुंचाते हैं।

2. **कीटनाशी बीजोपचार :** बीज को भण्डारण के दौरान सुरक्षित रखने के लिए उपयुक्त कीटनाशी से उपचारित किया जाता है। भण्डारण में प्रायः धुन, पतंगे तथा भृंग क्षति पहुंचाते है। इसके अतिरिक्त मृदा में सूत्रकृमि तथा अन्य कीट तरूण पौधे को क्षति पहुँचाते हैं।
3. **जीवाणु कल्चर बीजोपचार :** वायुमण्डल में उपलब्ध नत्रजन को पौधें सीधे नहीं ले पाते हैं, जीवाणु खाद का उपयोग करके यह नत्रजन पौधों को उपलब्ध हो सकती है। जीवाणु कल्चर सूक्ष्म जीवाणु युक्त टीका है जिसमें सहजीवी सूक्ष्म जीवाणु राइजोबियम, स्वतंत्र सूक्ष्म जीवाणु एजोटोबैक्टर या शैवाल होते हैं।

- दाल वाली फसलों के लिए–राइजोबियम।
- बिना दाली वाली फसलों के लिए – एजोटोबैक्टर।
- स्फुर जीवाणु खाद– फास्फेट विलयशील जीवाणु

बीजोपचार की विधियाँ : बीजों को सबसे पहले कवकनाशी उसके बाद आवश्यकतानुसार कीटनाशी दवा से उपचार करने के बाद अन्त में जीवाणु कल्चर से उपचारित करना चाहिए। रसायनों अथवा जैवकारकों के अनप्रयोग के लिए आमतौर पर तीन विधियाँ अपनाई जाती है जो कि रसायन या जैवकारक की प्रकृति पर निर्भर करती है।

- **धूल उपचार :** ज्यादातर फफूँदीनाशकों से बीजोपचार का प्रयोग धूल के रुप में करते हैं। उदाहरण के लिए कार्बेन्डाजिम द्वारा बीजोपचार।
- **कर्दम उपचार :** पानी में घुलनशील चूर्ण के मिश्रण के प्रयोग को कर्दम, स्लरी उपचार कहते है। उदाहरण के लिए राइजोबियम कल्चर द्वारा बीजोपचार।
- **द्रव्य उपचार :** तरल रूप में प्रयुक्त रसायनों के प्रयोग को द्रव उपचार कहते हैं। द्रव रसायनों को घोल फुहार तथा कुहासे के रूप में उपचारित किया जाता है।

जीवाणु कल्चर : जीवाणु कल्चर से उपचार सबसे अन्त में किया जाता है। इसके लिए ट्राइकोडर्मा फफूँदीनाशक, राइजोबियम, एजोटोबेक्टर या फास्फोबेक्ट्रीन काम में लेते हैं। इनमें किसी भी कल्चर की मात्रा 5 मिली/किलो बीज की दर से प्रयोग किया जाता है। बीजों को छाया में सुखाकर 1 2 घंटे के अंदर बुवाई कर देना चाहिए।

क्र. सं.	फसल	कवकनाशी (मात्रा प्रति किलो बीज)	कीटनाशी (मि.ली. प्रति किलो बीज)	जीवाणु कल्चर
1	उड़द, मूंग व मसूर	10 ग्राम ट्राइकोडर्मा या 2.0 ग्राम कार्बेन्डाजिम	–	राइजोबियम फास्फोबेक्ट्रीन
2	मूंगफली	2.0 ग्राम कार्बेन्डाजिम	क्लोरोपायरीफॉस 20 ईसी 10 मि.ली.	राइजोबियम फास्फोबेक्ट्रीन
3	तिल	2 ग्राम थायरम या 2.0 ग्राम कार्बेन्डाजिम	–	एजोटोबेक्टर फास्फोबेक्ट्रीन
4	ज्वार, बाजरा, मक्का	2 ग्राम कार्बेन्डाजिम	–	एपोटोबेक्टर फास्फोबेक्ट्रीन
5	सोयाबीन	2 ग्राम कार्बेन्डाजिम	थायोमिथोक्सेम 30 एफ. एस. 6 मि.ली.	राइजोबियम फास्फोबेक्ट्रीन
6	धान	2 ग्राम कार्बेन्डाजिम	–	एजोटोबेक्टर फास्फोबेक्ट्रीन

नोट :

1. तिल की फसल में बीज उपचार के लिए 1 किग्रा बीज में 3 ग्राम थाइरम या 2 ग्राम कार्बेन्डाजिम मिलावे। जीवाणु अंगमारी रोग खतरनाक बीमारी है, इससे बचाव के लिए 1 0 लीटर पानी में 2 ग्राम स्ट्रेप्टोमाइसिन का घोल बनाकर 2 घन्टे तक बीज को डुबोये तथा छाया में सुखाकर बुवाई करे।
2. ग्वार की फसल में अंगमारी रोग की रोकथाम हेतु 1 ग्राम एग्रीमाइसिन 4 ली. पानी में घोलकर 5 घन्टे तक बीज को भिगोकर उपचारित करे।

गर्मी और सूखा तनाव का दालों के उत्पादन पर प्रभाव और उनके निवारण की रणनीतियाँ-टिकाऊ कृषि की दिशा में एक वैज्ञानिक पहल

राजेश कुमार शर्मा, नीरज पाराशर, अर्जुन कुमार वर्मा एवं कमल कुमार शर्मा
यांत्रिक कृषि फार्म, उम्मेदगंज, कोटा (कृषि विश्वविद्यालय, कोटा)

राजस्थान का हाड़ोती क्षेत्र, जिसमें कोटा, बारां, बूंदी और झालावाड़ जिले सम्मिलित हैं, राज्य की दलहन उत्पादन प्रणाली में एक विशिष्ट स्थान रखता है। यहाँ की काली कपास मिट्टी और मानसूनी जलवायु सोयाबीन, चना, मूंग, उड़द और अरहर जैसी दालों के लिए उपयुक्त मानी जाती है। परंतु विगत वर्षो में जलवायु परिवर्तन के प्रभाव, विशेषतः हीट स्ट्रेस (गर्मी का अत्यधिक दबाव) और सूखा तनाव (जल की तीव्र कमी) ने इस संतुलन को बिगाड़ दिया है। फसल चक्रों की अनियमितता, मानसून की अनिश्चितता, बढ़ते तापमान और जल संसाधनों की कमी ने इस क्षेत्र में दालों की उत्पादकता को बुरी तरह प्रभावित किया है। यह लेख इन्हीं समस्याओं का वैज्ञानिक विश्लेषण प्रस्तुत करता है और किसानों के लिए व्यवहारिक, स्थानीय और तकनीकी समाधान भी बताता है।

हीट और सूखा तनाव : हाड़ोती की प्रमुख कृषि चुनौती

- **हीट स्ट्रेस (गर्मी का अत्यधिक दबाव) :** मार्च से अप्रैल के मध्य, जब सोयाबीन, मूंग और उड़द जैसी फसलें फूलने और दाना बनने की अवस्था में होती हैं, तब तापमान सामान्य से अधिक (38–44°C) हो जाता है। यह अत्यधिक गर्मी फसल की संवेदनशील अवस्थाओं पर नकारात्मक प्रभाव डालती है।

- **सूखा तनाव (जल की अनुपलब्धता) :** मानसून की देर से शुरुआत और असमान वर्षा वितरण फसल की बुआई और अंकुरण को प्रभावित करता है। कई बार फूलते समय वर्षा बंद हो जाती है, जिससे दाने बनना रुक जाता है। काली मिट्टी की जलधारण क्षमता सीमित होने से फसलें जल्दी मुरझा जाती हैं।

दालों पर हीट और सूखा तनाव के प्रमुख प्रभाव

प्रभाव	वैज्ञानिक विवरण
फूलों का झड़ना	उच्च तापमान पर परागण रुक जाता है, जिससे फूल गिरने लगते हैं और फल धारण नहीं होता।
अंकुरण में कमी	सूखा पड़ने से बीज पर्याप्त नमी न मिलने के कारण नहीं उगते या कमजोर पौधे निकलते हैं।
पत्तियों का मुरझाना	पानी की कमी से प्रकाश संश्लेषण बाधित होता है और पौधे कमजोर हो जाते हैं।
उपज में गिरावट	वैज्ञानिक शोध के अनुसार चने में 30.50% और मूंग/उड़द में 20.40% तक उपज घट जाती है।
बीज की गुणवत्ता में कमी	अधिक ताप और सूखे से बीज सिकुड़ जाते हैं और उनका वजन कम हो जाता है।

निवारण की व्यवहारिक रणनीतियाँ

1. हीट और सूखा सहनशील किस्मों का चयन :

इन क्षेत्रों में स्थानीय परिस्थितियों के अनुकूल किस्में अपनाना अत्यंत आवश्यक है।

फसल	सुझाई गई किस्में	विशेषताएँ
मूंग	SML–668, IPM–02–3, MH-1142, पूसा विशाल	कम अवधि, उच्च उत्पादकता, मध्यम ताप सहनशीलता
उड़द	कोटा उडद–3, 4, 5, मुकुन्दरा उडद–2, पन्त उडद 35, 31	उच्च तापमान सहन करने वाली किस्में
अरहर	ICPL – 87119 (Ashwini)	सूखा सहिष्णु, मध्यम अवधि में पकने वाली किस्म
सोयाबीन	JS-20-98, JS-2035, NRC 138, JS-95-60	उच्च उत्पादकता, मध्यम ताप सहनशीलता मध्यम अवधि में पकने वाली किस्म

2. जल–संरक्षण तकनीकों का प्रयोग :

- **मल्चिंग/पलवार**
- भूसे, घास या पॉलीथीन से खेत की सतह को ढककर मिट्टी में नमी बनाए रखें।
- मल्चिंग से वाष्पीकरण में 30.50% की कमी आती है।

- **फार्म पॉन्ड/मेडबंदी**
- खेत के कोनों में वर्षा जल संचयन हेतु छोटे तालाब बनाएं।
- इससे सिंचाई के लिए वैकल्पिक जल स्रोत उपलब्ध होता है।

- **बूंद–बूंद (Drip) सिंचाई प्रणाली**
- फसलों की जड़ों तक प्रत्यक्ष जल आपूर्ति होती है।
- 30-60% पानी की बचत संभव है और नमी बनाए रखना आसान होता है।

फसल में मल्चिंग और ड्रिप सिंचाई

3. फसल विविधीकरण और मिश्रित खेती

- सोयाबीन . मक्का, मूंग . मक्का, उड़द मक्का तथा चना, सरसों जैसी मिश्रित अन्य फसलें लगाकर जोखिम को कम किया जा सकता है।
- इससे भूमि का बेहतर उपयोग होता है और अलग–अलग फसलों की विपरीत प्रतिक्रिया से एक फसल की क्षति दूसरी से पूरी हो जाती है।

4. समय पर बुआई और बीजोपचार

- चना की बुआई 15 से 25 अक्टूबर के बीच करें ताकि फूलने का समय कम तापमान में आए।
- बीजों का जैविक उपचार (राइजोबियम, पीएसबी) करने से पौधों की रोग प्रतिरोधक क्षमता बढ़ती है।

5. जैविक खाद और सूक्ष्म पोषक तत्वों का अनुप्रयोग :

- वर्मी कम्पोस्ट, गोबर खाद से मृदा की संरचना व जलधारण क्षमता सुधरती है।
- सल्फर, बोरॉन, जिंक जैसे सूक्ष्म पोषक तत्वों का अनुप्रयोग करने से पौधों को सूखा के प्रति तनाव सहन करने की शक्ति देते हैं।

6. तकनीकी जानकारी का उपयोग :

- मौसम पूर्वानुमान ऐप्स, 'मेघदूत, 'कृषि सखी', 'किसान सुविधा' जैसे सरकारी ऐप्स से मौसम की सही जानकारी लें।
- स्थानीय कृषि विज्ञान केंद्र (KVK): प्रशिक्षण कार्यक्रमों, किसानों की कार्यशालाओं और "फार्म स्कूल" में भाग लेकर वैज्ञानिक तकनीकें सीखें।

सरकारी योजनाएँ और लाभ :

योजना का नाम	लाभ
प्रधानमंत्री कृषि सिंचाई योजना	ड्रिप व स्प्रिंकलर प्रणाली पर 50.70% सब्सिडी
राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा मिशन (NFSM)	दलहन बीज वितरण, मिनी किट, उन्नत तकनीक प्रशिक्षण
प्रधानमंत्री फसल बीमा योजना	असमय वर्षा, सूखा या ताप से फसल हानि पर मुआवजा
कृषि यंत्र अनुदान योजना	फार्म पॉन्ड डिगर, रोटावेटर, मल्चर पर अनुदान

हाड़ोती के किसानों के अनुभव से सीख :

1) कोटा जिले के श्री रामप्रसाद वर्मा ने मल्चिंग और फार्म पॉन्ड तकनीक से चने में 40 प्रतिशत अधिक उत्पादन लिया।
2) झालावाड़ की महिला कृषक समूह ने ड्रिप सिंचाई के सहारे मूंग की खेती में कम लागत में अधिक लाभ कमाया।
3) बूंदी में चना. सरसों की मिश्रित खेती से वर्ष 2024 में औसत उपज 8 क्विंटल प्रति बीघा तक पहुंची।

निष्कर्ष :

उच्च तापमान और सूखा तनाव जैसी चुनौतियाँ हाड़ोती क्षेत्र की दाल उत्पादन प्रणाली के लिए गंभीर समस्या बनती जा रही हैं। परंतु यदि समय रहते स्थानीय जलवायु के अनुकूल तकनीकी नवाचारों, फसल प्रबंधन रणनीतियों और सरकारी योजनाओं को अपनाया जाए, तो यह संकट किसानों के लिए अवसर में बदल सकता है। यह आवश्यक है कि हम परंपरागत कृषि ज्ञान को वैज्ञानिक तकनीकों के साथ जोड़ें और क्षेत्र विशेष की भौगोलिक परिस्थितियों के अनुसार खेती करें। इससे न केवल कृषि लाभकारी बनेगी, बल्कि यह पर्यावरण–संवेदनशील और सतत विकास की दिशा में भी एक मजबूत कदम होगा।

***

GAJ CHANDRA POLYMERS PRIVATE LIMITED
JAIPUR, RAJASTHAN

SunproMaxx®

स्मार्ट किसान की पहली पसंद

UV STABILISED | 100% VERGIN MATERIAL | TRACTOR READY | LONG DURABILITY | HIGH CROP YEILD | WEED CONTROL | NO SOIL EROSION | SAVE WATER

मल्च फिल्म
25 माइक्रॉन
30 माइक्रॉन
50 माइक्रॉन
100 माइक्रॉन
150 माइक्रॉन

ड्रिप पाइप
एचडीपीई पाइप
पीवीसी पाइप

हमारे यहां कृषि से संबंधित सभी प्रकार के उपकरण मिलते हैं।

पॉन्ड लाइनर
300 माइक्रॉन
500 माइक्रॉन
1000 माइक्रॉन
1500 माइक्रॉन
2000 माइक्रॉन
3000 माइक्रॉन

स्प्रिंकलर सिस्टम
1200mm त्रिशूल
1500mm त्रिशूल
मिनी स्प्रिंकलर सेट

सब्सिडी मंजूर

संपर्क करें
+91 - 7230080250 Abhishek Sharma
+91 - 6375902900 Dhruve Sharma
gajchandrapolymers@gmail.com

रजि. नं. : RAJHIN/2021/81869 पंजीयक समाचार पत्र भारत सरकार
पोस्टल पंजीकृत संख्या कोटा/323/2023–25

स्वामी प्रकाशक : डॉ. प्रताप सिंह, निदेशक, प्रसार शिक्षा निदेशालय
कृषि विश्वविद्यालय, कोटा
Website : https://aukota.org
Email: abhinavkrishi.aukota@gmail.com
दूरभाष : **0744- 2326727**

पुस्त प्रेष्य ______________________

स्वामी निदेशक प्रसार शिक्षा, कृषि विश्वविद्यालय, कोटा प्रकाशक डॉ. प्रताप सिंह, मुद्रक श्री जमील अहमद, मैसर्स डायमण्ड प्रिन्टर्स, शॉप नं. 2, काली मस्जिद के पास, नई धानमण्डी, कोटा से मुद्रित एवं निदेशक, प्रसार शिक्षा निदेशालय, कृषि विश्वविद्यालय, बोरखेड़ा, कोटा, राज. से प्रकाशित, प्रधान संपादक डॉ.प्रताप सिंह